अमृत की रचनाएँ—

उपन्यास

बीज

नागफनी का देश

हाथी के दाँत

कहानियाँ

जीवन के पहलू

इतिहास

लाल धरती

कस्बे का एक दिन

कठघरे

भोर से पहले

आलोचना

नयी समीक्षा

साहित्य में संयुक्त मोर्चा

यात्रा

सुबह के रङ्ग

अनुवाद

अग्निदीक्षा—निकोलाई आस्त्रोवस्की

आदिविद्रोही—हावर्ड फास्ट

फाँसी के तख्ते से—जूलियस फूचिक

नूतन आलोक—कहानियाँ

बरन-बरन के फूल—कहानियाँ

अमृत राय

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण—दिसम्बर १९५६

प्रकाशक :
हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

मुद्रक :
केशव प्रेस
इलाहाबाद

आवरण तथा वर्णलिपि :
कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव

मूल्य
दो रुपया

क्रम

भोर से पहले

सबेरे का वक्त है। गंगा-स्नान के प्रेमी अकेले और दुकेले और चार-चार छः-छः के गुच्छों में गंगा-तट से लौटकर दशाश्वमेध के तरकारीवालों और मेवाफरोशों से उलझ रहे हैं, मोल-तोल कर रहे हैं। दूकानें सब दुलहिनों की तरह सजी-बजी खड़ी हैं। कहीं चायवाला चाय के शौकीनों को गाढ़े कत्थई रंग की चाय पिला रहा है, कहीं पानवाला चांदी का वरक़ लगा बीड़ा और खुशबूदार जर्दा किसी ग्राहक को पकड़ा रहा है। एक जगह बंगला अखबारोंवाला 'युगान्तर' और 'आनन्द-बाजार' की हांक लगा रहा है। सब के चेहरे पर, सब के कपड़ों में, सब की बोली में अजब एक ताज़गी है। सुनहली धूप फैल गयी है, जो इस बसन्ती मौसम में एक खास रंग भर रही है, जो कि तन्दुरुस्ती का रंग है, जिसके बीच सी० एन० डे का अंग्रेजी दवाखाना और ढेरों आयु-

वैद औषधालय इस समय इन्दुभूषण को अच्छे नहीं मालूम पड़ते। लेकिन थोड़ा ही थम कर विचार करने पर इन्दुभूषण को यह समझते देर नहीं लगती कि इस वक़्त फ़िज़ा को जो रंगत उसे दिखाई दे रही है, वह हर वक़्त नहीं रहती, वह तो घंटे दो घंटे की बहार है, और उसके बाद तो फिर जहां जिन्दगी की और सभी खटर-पटर है, वहां हारी-बीमारी भी है ही।

इन्दुभूषण को बगल से एक आवाज सुनाई दी—कहिये महाशय जी!

इन्दुभूषण को इसका जरा भी गुमान नहीं था कि यह वाक्य उसी पर फेंका गया है, लिहाजा वह अपने विचारों के प्रवाह में अपनी उसी धीमी चाल से आगे, घाट की ओर बढ़ता रहा।

इन्दुभूषण को अपनी ओर मुखातिब न होते देखकर वह काफी गठी हुई-सी, मगर अब झूली-झूली मांसपेशियों का, अधेड़, ठिंगना-सा, गंदुमी रंग का आदमी एक हाथ में कुछ साग और बैंगन वगैरह, एक छोटे से झोले में, और दूसरे हाथ में एक डेढ़ पाव-आध सेर का रोहू का बच्चा लिये सामने आ खड़ा हुआ—बोलिये न, कैसा है आप? हम आपको आवाज दिया, आप सुना नहीं!

इन्दुभूषण ने उसे पहचाना नहीं। उस व्यक्ति की हुलिया से, खास कर उसकी बायीं आंख की फुल्ली से, इन्दुभूषण को यह चेहरा कुछ पह-चाना हुआ-सा तो लगा, बस इतना कि हां, यह शकल कहीं देखी है। मगर कब और कहां, यह बिलकुल याद नहीं पड़ता था। इसी विस्मृति की रेखा को पढ़ कर उस व्यक्ति ने इन्दुभूषण के कुछ भी कहने के पहले, कुछ मुसकराकर अपनी झेंप मिटाते हुए कहा—आप हमको पहचाना नहीं, हम आपका पड़ोसी, आपका टोला में हमारा भी बाड़ी.....

अब इन्दुभूषण को एक-एक करके सभी बातें याद आ गयीं—अभी उस रोज यही बंगाली बाबू तो उस छोर पर वाले पीले मकान में आये हैं, अभी सात दिन भी तो हुए न होंगे, यह और इनकी तीन लड़कियां......

—याद आ गया बंगाली बाबू। ज़रा देर लगी, माफ कीजिएगा, पहले कभी भेंट नहीं हुई थी, इसी से। कहिए, घर में अच्छी तरह जम तो गये आप? घर अच्छा है न? बाहर से तो अच्छा लगता है?

—ऐक रकम भालो बाड़ी......हम लोग का परिवार भारुम नेहि हाय।

—आपके साथ बस आपकी तीन कन्याएँ हैं शायद?

उत्तर में उस व्यक्ति ने अजीब ढंग से मुसकरा दिया और अपने अगल-बगल देख कर कहा—हाँ मशाइ, और कोई नहीं, दूसरा कोई नहीं......मशाइ, आपका नाम?

—इन्दुभूषण। और आपका?

—बेनीमाधव बोस।

फिर ज़रा देर के बाद बंगाली बाबू बोले—हम सोचा, आप हमारा पड़ोसी, आपसे हमारा आलाप नेहीं होने से नेहीं चलेगा....आप बुरा तो नेहीं मान गिया?

दुबला-पतला गोरा सा इन्दु अभी तरुणाई की उस मंज़िल में है, जब हर नौजवान के दिल में किसी तरुणी के निकट परिचय की भूख रहती है, जब उसे ऐसे किसी साथी की ज़रूरत होती है, जिसके साथ वह अपनी नयी उम्र की उस अजीब, तंग करनेवाली कसमसाहट को

बाँट सके। शायद इसीलिए वेनीमाधव से मिल कर उसे मन-ही-मन कुछ गुदगुदी-सी महसूस हुई। आते-जाते उसने दो तीन बार उन लड़कियों को खिड़की में खड़े देखा था।

इतवार का दिन था, सबेरे का वक्त। वह घर के सामने सहन में डेक-चेयर डाल कर लेटा एक कहानी की किताब पढ़ रहा था।

अभी-अभी उसने एक कहानी खत्म की थी और किताब बन्द करके वैसे ही लेटा हुआ सूनी निगाहों से सामने की ओर देख रहा था। कहानी की नायिका ने संखिया खाकर आत्म-घात कर लिया था और उसकी आंख के सामने उसी का उदास, मुर्झाया हुआ चेहरा घूम रहा था, और कान में उसी के आखिरी शब्द बज रहे थे—मैं जी नहीं सकी, इसलिए मर रही हूँ।

इन्दु का नौजवान मन इस बात को समझ ही नहीं पा रहा था कि उस लड़की ने संखिया क्यों खाया? संखिया खाना ही क्या उसके लिए अन्तिम राह बची थी? क्यों मरी वह? उसने क्यों नहीं कहा—मैं ऐसे समाज को लात मारती हूँ...साहस? संखिया खाने का साहस था!

उसका मन नायिका के आत्मघात पर विफल आक्रोश से भर रहा था, विफल आक्रोश इसलिए कि खुद उसके मन में कहीं पर यह चोर था कि समाज को लात मारने की बात कहना जितना आसान है, लात मारना उतना आसान नहीं है।

अभी वह इसी कशमकश में था कि वेनीमाधव बाबू फाटक में दाखिल हुए, वही धोती, और मैली-सी, पूरी बाँह की कमीज़ पहने, जो कभी सफेद रही होगी। किसी नये घर में पहले-पहल दाखिल होते समय जो झिझक आदमी को होती है, वही झिझक बेनीमाधव बाबू को भी हो रही थी। फाटक खोल कर वह अन्दर दाखिल हुए थे और आगे

बढ़ने के पहले अपने इर्द-गिर्द चौकन्ने खरहे की तरह देख रहे थे, कि इन्दुभूषण ने उठ कर उनका स्वागत किया—आइए बंगाली बाबू, आज इधर कैसे भूल पड़े ?

बंगाली बाबू ने वहीं से कहा—धन्यवाद...धन्यवाद...आप ठीक तो है ?

इन्दु का स्वस्थ ताजा चेहरा वेनीमाधव बाबू के इस निरे शिष्टाचार वाले सवाल का सबसे अच्छा जवाब था। उन्हें कुर्सी देते हुए इन्दु ने कहा—जी मैं बिलकुल ठीक हूँ, आप अलबत्ता कुछ कमजोर दिखाई दे रहे हैं।

वेनीमाधव बाबू ने कहा—आपनी त जानेन इन्दु बाबू, आप तो जानता हमारा जिन्दगी...

जो बात हमारी सहानुभूति उभारने के लिए ही कही गयी हो, उसे सुनकर सहानुभूति के दो शब्द न कहना बहुत मुश्किल होता है। इन्दु ने कहा—सचमुच बड़ी कठिन जिन्दगी है आपकी।...आपकी बड़ी लड़की की क्या उम्र होगी बंगाली बाबू ?

वेनीमाधव इस सवाल का आशय कुछ खास नहीं समझे, लेकिन इतना जरूर उनके मन में कौंधे की तरह चमक गया कि इस आदमी से आत्मीयता बढ़ाने के लिए इस मौके का इस्तेमाल होना चाहिए।

वेनीमाधव बाबू ने अगल-बगल देखकर बहुत दबे हुए स्वर में कहा, जैसे कोई गोपनीय बात कह रहे हों—जिस लड़की का बात आप कह रहा है इन्दु बाबू उसका उमिर बीस साल है। उसका नाम माधवी है। उससे छोटा जो लड़की है, उसका नाम पुतुल है। उसका उमिर अठारह साल है, और हाशी...वो तो अभी बच्चा है—कहकर वह झेंप मिटाने-जैसी हँसी हँसा, एक विचित्र खोखली हँसी।

इन्दु को इतने तफसीली जवाब की उम्मीद न थी। वह तो यों ही उसने सहानुभूतिवश पूछ लिया था, यह समझकर कि शायद

सयानी लड़की की शादी की चिन्ता में ही बंगाली बाबू घुले जा रहे हैं। और बंगाली बाबू थे कि वंश-वृक्ष ही खोल कर बैठ गये। इन्दु को इस चीज से कुछ उलझन ही महसूस हुई मगर उसने कुछ कहा नहीं। थोड़ी देर चुप बैठा उन्हें देखता रहा, फिर बोला—अच्छा बंगाली बाबू, अब आज्ञा दीजिए, मुझे एक जगह जाना है।

और कुर्सी पीछे को सरकायी।

इन्दु को उठता देखकर अब बङ्गाली बाबू को उलझन हुई। अभी तो बात का सिलसिला ठीक से जम भी नहीं पाया, और यह आदमी उठकर चला जा रहा है! काम की बात अभी हुई ही नहीं। और जैसे शब्द मछली के काँटे की तरह गले में फंस रहे हों बात उनके मुँह तक आ-आ कर रुक जाती थी। अपनी लड़कियों की चर्चा निकालने में भी उनका मकसद यही था कि यह जो मछली का कांटा उनके गले में फंस रहा था, उसे पानी के सहारे नीचे उतार दें। इतने में ही इन्दु कुर्सी से उठ गया। उसकी देखादेखी बङ्गाली बाबू भी कुर्सी से उठ तो गये मगर इन्दु की नज़र बचाते हुए दूसरी ही किसी तरफ देखते खड़े रहे। इन्दु समझ गया कि बङ्गाली बाबू मुझसे कुछ कहना चाहते हैं जो कह नहीं पा रहे हैं।

इन्दु ने उन्हें सहारा देने की गरज से कहा—मेरे योग्य और कोई सेवा, बङ्गाली बाबू?

डूबते को तिनके का सहारा मिला। कभी-कभी बात को बगैर घुमाये-फिराये सीधे-सीधे कह देना ही कुल मिलाकर आसान पड़ता है, कुछ यही सोच कर बङ्गाली बाबू ने अगल-बगल देखकर कुछ सहमे-से स्वर में कहा—आप हमको दस रुपिया देने सकेगा? आपको रुपिया हम एक सप्ताह किंवा पनेरो दिन में फेरोत दे देगा, आज हमारा भीषण तागिद......

इन्दु ने कुछ कहा नहीं, अन्दर से दस रुपये का एक नोट लाकर बङ्गाली बाबू के हाथ में दे दिया और नमस्ते करके फौरन अन्दर चला गया। उसको इस खयाल से ही घुटन होती थी कि यह आदमी जो ग़रज़ का मारा मेरे पास आया है, इस दस रुपिट्टी को पाकर मेरे सामने खीस निपोरेगा।

लेकिन अन्दर जाकर इन्दु तत्काल फिर बाहर आया। वह चलते-चलते बङ्गाली बाबू से यह कहना चाहता था कि वे अपनी लड़कियों को इस बात के लिये रोक दें कि खिड़की में बहुत न खड़ी रहा करें क्योंकि शहरों में तो, फिर आप जानते ही हैं...

उसके बाहर आने-आने तक वेनीमाधव बाबू फाटक के बाहर हो चुके थे। उसने उन्हें पुकारना ठीक नहीं समझा। सोचा, फिर कभी कह दूँगा।

कई दिन बीत गये।

गोधूलि का समय था। इन्दु कालेज से लौट रहा था। आज उसे लाइब्रेरी में बहुत देर लग गयी थी।

उसका घर पक्की, डामर की सड़क से कोई डेढ़ सौ गज़ भीतर को हटकर है। जहाँ डामर की सड़क छोड़कर ऊबड़-खाबड़ कच्चे रास्ते में दाखिल होते हैं ठीक वहीं वेनीमाधव बाबू वाला पीला मकान है। पुतुल दरवाज़े पर ही खड़ी थी। पुतुल ने उसे आवाज़ दी—इन्दु बाबू!

इन्दु कुछ झिझकते हुए उसके पास गया। पुतुल ने हलके से मुसकराकर कहा—इन्दु बाबू, आप कभी हमारे घर नहीं आते?

इन्दु ने अपने मन में कहा, लगता है बङ्गाली बाबू ने मेरा पूरा परिचय अपने घरवालों को दे दिया है। यह बात उसे अच्छी भी लगी।

इन्दु ने कहा—जो, मौके की बात होती है। वैसे मैं आने की कई दिन से सोच रहा था। और मुसकराया।

इन्दु की मुसकराहट से पुतुल के दिल में एक धक्का-सा लगा। बोली—आइये।

इन्दु ने कहा—अभी नहीं। घर पर लोग बाट देख रहे होंगे। हो सका तो एक डेढ़ घंटे बाद आऊँगा।

पुतुल ने उसी अन्दाज से कहा—जरूर आइएगा। और फिर मुसकरायी।

इन्दु वहां से चला तो उसके पैर हल्के पड़ रहे थे।

घर में दाखिल होते ही एक छोटा-सा सायबान था, जो बिलकुल अंधेरा पड़ा था। उसमें एक टुटही कुर्सी एक कोने में पड़ी थी। वहाँ बेनीमाधव बाबू को न पाकर इन्दु को और आगे बढ़ने में झिझक मालूम हुई। सायबान के बाद ही एक बहुत सीला हुआ-सा आंगन था, जिसमें एक अंधी-सी लालटेन एक तरफ को रखी हुई थी, जिससे लाल-लाल रोशनी निकल रही थी। लोहे का एक जँगला ही आंगन की छत थी। एक अलगनी पर तीन-चार कपड़े सूख रहे थे, एक लाल पाड़ की साड़ी, दो पेटीकोट, दो-तीन बॉडिस। इन्दु की हिम्मत और आगे बढ़ने की नहीं हुई। उसने आंगन में पैर रखते ही आवाज दी : बंगाली बाबू हैं ?

माधवी नीचे ही थी। इन्दु की आवाज सुनी। बोली—आइए इन्दु बाबू !

इन्दु ने पूछा—बेनीमाधव बाबू नहीं हैं ?

माधवी ने कहा—कहीं गये हैं। अभी लौट आयेंगे। आप ऊपर चलिये। और पुतुल को आवाज दी—पुतुल, तोमार इन्दु बाबू एसेचेन।

आंगन की बात-चीत सुन कर पुतुल खुद ही नीचे आ रही थी। बोली—चलिए इन्दु बाबू। इन्दु ने मुसकराहट से उसका जवाब दिया। फिर कहा—अच्छा, मैं फिर किसी रोज आऊंगा। और चलने को हुआ। लेकिन पुतुल ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे अपनी तरफ खींचते हुए बोली—आप ऊपर चलिये ना इन्दु बाबू, बाबा आते होंगे।

इन्दु के पैर अब भी आगे नहीं बढ़े। पुतुल ने रूठने के अन्दाज में होंठ निकालते हुए कहा—आप इतने डरता क्यों है इन्दु बाबू। आप तो पुरुष मानुष हाय...आर हम...तो लेड़की। आप क्यों डरता? और एक प्रकार से उसे खींचते हुए ऊपर ले चली। बांयीं बगल से ही जीना था, संकरा सा। ऊपर जाकर इन्दु ने देखा कि अगल-बगल दो कोठरियां हैं। दोनों में एक-एक खाट पड़ी हुई है और दोनों में एक-एक ढिबरी जल रही है। पुतुल ने कोठरी में दाखिल होते ही चटपट बिस्तर की चादर की शल दूर की और इन्दु की ओर ताकते हुए कहा—आइये ना इन्दु बाबू। हियां डरने का कोई बात नहीं है। आप हियां बैठिये, बाबा अभी आएगा। थोड़ा ओपेक्खा करने होगा।

इन्दु का मन बार-बार हो रहा था कि उतर कर भाग जाये, लेकिन पैर जैसे बंध-से गये थे। जाकर पुतुल के बिस्तर पर बैठ गया। उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। पुतुल ने ढिबरी स्टूल पर से हटा कर ताक पर रख दी और स्टूल वहीं पास ही खींच कर बैठ गयी। एक-डेढ़ मिनट तक पूर्ण निस्तब्धता रही। फिर उसे भंग किया पुतुल ने—इन्दु बाबू, आप बहुत बुरे हैं! और मुसकरायी। इन्दु का दिल और जोर से धड़कने

लगा। उसने कोई जवाब नहीं दिया और वैसे ही, सिकुड़ा-सिमटा बैठा रहा और फिर चन्द लमहों के लिए खामोशी छा गयी।

—आपका ब्याह हुआ है इन्दु बाबू?

इस बेतुके सवाल का सन्दर्भ उसकी समझ में नहीं आया, लेकिन इसका जवाब आसान था, शायद इसी खयाल से उसने कहा—नहीं।

पुतुल ने उसके जवाब में कहा—च् च् च् च् च् और मुसकरायी।

इन्दु ने अपने मन में कहा—जरा इसे देखो तो कैसे कर रही है! मुझे निरा मिट्टी का लोंदा समझ लिया है इसने क्या! कैसी अजीब लड़की है! और एक बार बहुत जोर से उसका जी हुआ कि इस लड़की को, जो अभी इतनी जवान है और जो सिर्फ उसे सताने के लिये उसकी बगल में बैठकर इस तरह मुसकरा रही है, उठा कर इसी बिस्तरे पर पटक दे और......और उसे किसी जगह पर ऐसा हबोककर काट ले कि खून निकल आए, मगर उसने जब्त किया। अब तक सारी परिस्थिति कुछ-कुछ उसकी पकड़ में आने लगी थी और एक अजब खिन्नता उसके मन में भर रही थी।

इसी तरह कोई दस मिनट गुजर गये। तब तक बगल की कोठरी से किसी पुरुष कंठ की भनक इन्दु के कान में पड़ी। उसने पुतुल से कहा—देखिए, बेनीमाधव बाबू शायद आ गये।

पुतुल ने इस बार एक भिन्न प्रकार की हँसी के साथ कहा—नहीं इन्दु बाबू, वह तो माधवी का...दोस्त है...नलिन।

एकाएक इन्दु बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। पुतुल भी उठ खड़ी हुई। उसके चेहरे पर न जाने कैसी घबराहट लिखी हुई थी।

—जाइएगा?......चले जाइएगा? अभी से क्यों? आप बाबा को दस टाका दिया था न? नहीं...नहीं...नहीं, पुतुल ने मान

करने के अंदाज में कहा और अपने जलते हुए होंठ इन्दु के होंठों पर रख दिये।

यह सब ऐसा बिजली की तरह हुआ कि इन्दु एकदम बौखला गया, मगर तो भी उसे लगा कि जैसे किसी ने उसके होंठों पर अंगारा रख दिया हो। गुस्से से उसकी आँखें लाल हो गयीं और नथने फड़कने लगे। उसने झटका देकर पुतुल को अलग किया और मजबूत हाथों से उसके कन्धों को पकड़ कर पूरी ताकत से उन्हें झकझोरते हुए भारी करख़्त आवाज में चिल्लाकर उसने कहा—हाँ दिये थे...दिये थे... इसी के लिए दिये थे !...तुम उसे चुकता करोगी...तुम उसे चुकता करोगी....तुम उसे चुकता करोगी...कहते हुए उसने जोर से उसे धक्का दिया और पुतुल जाकर सीधी खाट की पाटी पर गिरी। इन्दु ने ढिबरी लेकर ज़मीन पर पटक दी और कोठरी के किवाड़ों को झपाटे से बंद करता हुआ तेजी से कमरे के बाहर हो गया।

झपाटे से दरवाजे का बन्द होना सुनकर माधवी अपनी कोठरी से निकल कर आयी। इन्दु चला जा रहा था और पुतुल पाटी से लगी लगी सिसक रही थी। उसके शरीर को भी कुछ चोट लगी थी, लेकिन उससे कहीं ज्यादा और असल चोट लगी थी उसके मन को और वह चोट सिर्फ इतनी नहीं थी कि इन्दु ने उसका अपमान किया है।

माधवी ने पुतुल का हाथ पकड़ कर उठाने की कोशिश करते हुए कहा— पागल हो गयी है पुतुल ? वह चला गया। जानवर ! उजड्ड गँवार !

पुतुल को माधवी के समवेदना के ये शब्द ज़हर जैसे लगे। उसने आंखें उठा कर एक मिनट, अपलक देखा और आदेश के स्वर में कहा—दीदी तुम यहाँ से चली जाओ...

माधवी ने पुतुल की रोती हुई मगर कठोर आंखें देखीं और जरा देर को ठिठक गयी। फिर कहा—कैसा अजीब पागलपन है...! और इन्दु के लिए एक बड़े कुत्सित शब्द का प्रयोग किया।

पुतुल की आँखों में सान पर चढ़ी हुई कटार की-सी एक चमक आयी और उसने नागिन की तरह फुफकारकर, किंचित् चढ़े हुए स्वर में कहा—दीदी तुम इसी वक्त बाहर चली जाओ!

माधवी 'जरा इस बचपन को तो देखो, हुँः' बड़बड़ाती हुई बाहर निकल गयी और पुतुल वैसे ही, पाटी पकड़े रोती रही।

कई दिन गुजर गये। माधवी पुतुल को पूरे वक़्त उदास और खिन्न देख कर बहुत परेशान रहती थी। बात यह थी कि माधवी से भी ज्यादा पुतुल के ही सहारे उस मकान की ईंटें टिकी हुई थीं और अब वही पुतुल आने जाने वालों की तरफ से उदासीन हो रही थी। माधवी को यह बात बुरी लगती थी और उसने एक-दो बार पुतुल को समझाने की भी कोशिश की, लेकिन पुतुल को तो जैसे माधवी की शक्ल से चिढ़ हो गयी थी। हर बार जब माधवी उससे कुछ कहने की कोशिश करती, तब दोनों में अच्छी खासी जंग हो जाती। यहाँ तक कि एक रोज माधवी ने बड़े कुत्सित ढंग से कहा—हाँ-हाँ, बहुत देखे हैं मैंने तुम्हारे इन्दु बाबू-जैसे, अनेक देखेचि, नपुंसक, बड़ा गेयान (ज्ञान) देने चला है......ढोंगी!

इसके जवाब में पुतुल ने ऐसी भयानक आँखों से माधवी को देखा कि वह एक बार डर गयी। पुतुल ने दाँत पीस कर कहा—चुप, माधवी!

माधवी को पुतुल का स्वर साँप की फुफकार-जैसा सुन पड़ा।

माधवी का दिल भी कोई कड़वी, जहरीले काँटे की तरह चुभने-वाली बात कहने के लिए तिलमिला रहा था। उसने बड़े सादे अन्दाज में, लेकिन अपनी बात में जहर भर कर कहा—अच्छा, तो अब आप

सती सावित्री बनेंगी और आपके सत्यवान?...ओह उनि...वह...जरूर जरूर...और बुरा भी क्या है! और ही-ही करके हँसी। उस हँसी से पुतुल के रोंगटे खड़े हो गये और वह रो पड़ी। माधवी ने एकदम मर्म पर तीर मारा था। पुतुल रोती-रोती ही भाग कर अपनी कोठरी में गयी और उसे अन्दर से बन्द कर अपने बिस्तर पर औंधे ही गिर पड़ी, और वैसी ही पड़ी न जाने कब तक उस मैली चादर को भिगोती रही। माधवी ने विद्रूप से जिस उनि शब्द का प्रयोग इन्दु बाबू के लिये किया था, वही उनि असंख्य जुगुनुओं की तरह उसके मन के आकाश में उड़ रहा था, जल रहा था और बुझ रहा था और मन को अच्छा लग रहा था, पर उससे रोशनी बिलकुल नहीं हो रही थी, उतनी भी नहीं, जितनी कि ताक में रखी उस शीशे वाली ढिबरी से, जिसे इन्दु ने पटक कर फोड़ दिया था और जिसे सबेरा होते ही माधवी ने फिर मँगाकर रख दिया था। निराशा की उस काली घटा में जब जुगुनू चमकते थे, तो जुही के फूलों की तरह सुन्दर दीख पड़ते थे, लेकिन फिर अँधेरा और भी घना हो जाता था। पुतुल ने उठ कर ढिबरी को भी बुझा दिया और फिर पड़ रही। वह जितना ही इसके बारे में सोचती थी, उतना ही उसे अपनी जिंदगी एक दलदल के मानिंद नज़र आती थी। सन् तैंतालिस के उस बड़े अकाल के बाद उसके माँ-बाप, दोनों नहीं रहे थे और रिश्ते के इन मामा ने आगे आकर उसकी सरपरस्ती अख्तियार की थी, तभी से वह दलदल शुरू हुआ था और इस ढाई साल में लगातार गहरा ही होता गया था और अब? अब क्या?......अब कुछ नहीं हो सकता...और अनजान में ही एक सर्द आह उसके मुंह से निकल गयी।

—मेरे जोर लगाने से क्या होगा?...मैं जोर लगा भी सकूँगी—कहाँ है मेरे पास जोर?...नहीं, नहीं, कहीं कुछ नहीं है। यह घर ही भुतहा है, खून चूस लेता है। मेरा अब कुछ नहीं हो सकता, मुझमें अब कुछ नहीं रहा। मुझे अब कोई इस कुएं से नहीं निकाल

सकता......यह ख़याल आते ही उसे इन्दु पर बेहद गुस्सा आया जिसने उसके अन्दर यह जहर का बीज बो कर उसके मन की शान्ति भी छीन ली थी। उसके आने के पहले, जिन्दगी जैसी भी थी, बगैर किसी बखेड़े के चल तो रही थी। अब न तो उसे अपने छुटकारे का ही कोई रास्ता दिखाई देता था और न वह माधवी की तरह इस घटना को अपने ऊपर से वैसे झाड़ ही पाती थी कि जैसे बतख अपने पंखों पर से पानी को झाड़ देती है। दो रोज उसने परिस्थिति से पूरा असहयोग किया, लेकिन फिर घर के वातावरण ने, घर की असली, कुआं खोद और पानी पी वाली हालत ने, खुद उसके ढाई साल के जीवन के दैनन्दिन अभ्यास ने, जो कि खून का हिस्सा बन जाता है, उसके ऊपर जीत पायी और वह फिर धीरे-धीरे अपनी पुरानी जिन्दगी पर लौट आयी। उसके अन्दर कुछ कड़ियाँ टूटी जरूर थीं लेकिन नतीजे पर तत्काल उनका कुछ खास असर नहीं था। पुतुल के मन पर यह चीज साँप की तरह कुंडली मार कर बैठ गयी थी कि वह दलदल में फँस चुकी है और अब उससे बाहर आने के लिए जितना भी हाथ-पैर मारेगी उतना ही और उसके भीतर समा जाएगी। जाहिरा वह माधवी से पूरे पेचोताब से लड़ रही थी लेकिन असलियत में वह अन्दर-ही-अन्दर उसके आगे हथियार डालती जा रही थी।

पुतुल के पास से लौट कर उस रात इन्दु को भी बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। रह-रह कर उसे पेट में, कि सीने में, कि सिर में दर्द मालूम हो रहा था, एक अजीब तकलीफ थी, जिसमें गुस्सा और पछतावा दोनों मिला हुआ था। उस वक्त उसे बेपनाह गुस्सा आ गया था सही, लेकिन अब तो ज्वार उतर गया था और अब उसे यह ख्याल सता रहा था कि मुझे उस लड़की के साथ ऐसा क्रूर नहीं होना चाहिए था।...

तुम्हें क्या मालूम कि कौन आदमी किस मजबूरी का शिकार है, बड़े पारसा बनने चले हो ! सब को अच्छा खाने को मिले और अच्छी तरह रहने को मिले और मनमाफिक कपड़े पहनने को मिलें तो सब ऐसे ही पारसा हो सकते हैं...मगर इसके बाद भी शरीर बेचना उसके नजदीक एक ऐसा गंदा काम था कि इसके लिए वह पुतुल को, या माधवी को, या बंगाली बाबू को माफ नहीं कर सकता था। और वह बड़ी कोशिश करने पर भी कोई दो बजे तक नहीं सो पाया। उसके मन ने जो एक मूर्ति अभी गढ़नी शुरू ही की थी उसे हकीकत के पहले ही बेदर्द हथौड़े ने तोड़ कर जमीन पर, उसके पैरों के पास डाल दिया था। एक हल्की-सी गुदगुदी जो थी, उसे किसी ने चाकू मार दिया था। एक कली जो सिर्फ एक कली थी जिसमें अभी गंध न थी उसे किसी ने चुटकी में लेकर मसल दिया था। इन्दु को रह-रह कर लगता कि उसे साँस लेने में तकलीफ हो रही है।

उस दिन से इन्दु ने उधर से निकलना ही छोड़ दिया। उसने अब अपना एक दूसरा ही रास्ता बना लिया था, जो कुछ लंबा जरूर पड़ता था लेकिन इन्दु को पसंद था, अगर और किसी कारण से नहीं तो सिर्फ इसलिए कि उस पर बंगाली बाबू का घर नहीं पड़ता था और इस बात का डर नहीं था कि पुतुल सामने पड़ जाएगी या पुकार लेगी या बेनीमाधव बाबू भचकते हुए, सामने आकर खड़े हो जायेंगे और बड़ी सादगी से बोल पड़ेंगे—शे दिन आप आया था, हम बाड़ी में नहीं था।

धीरे-धीरे उस रात वाली घटना को महीने भर से ऊपर हो गया और इस बीच इन्दु के दिल का घाव भी अब वैसा हरा न रहा और क्षोभ

तो बिलकुल ही मिट गया। उन लोगों के लिए इन्दु के मन में अब केवल करुणा थी। लेकिन फिर उनके सामने जाने का साहस उसके अन्दर न था।

रात के आठ बजे होंगे। वह अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा था। किसी ने दरवाजे पर हल्के से, जैसे डरते-डरते, दस्तक दी। इन्दु ने दरवाजा खोला। पुतुल सामने खड़ी थी। पुतुल! इन्दु ठिठक गया। वह पुतुल की निगाहों से अपने आप को ऐसे बचा रहा था जैसे कोई अपने किसी ज़ख़्म को रगड़ लगने से बचाये।

पुतुल ने मुसकराकर कहा—नमस्कार इन्दु बाबू!

इन्दु ने उसके नमस्कार का उत्तर देते हुए देखा कि आज पुतुल की मुसकराहट में एक नया ही, कुछ कातर-सा, भाव है। विद्रूप की तो बात ही अलग है, उसमें चपलता भी नहीं है।

पुतुल ने कहा—इन्दु बाबू, मैं आप से माफी माँगने आयी हूँ।

इन्दु ने कहा—माफी?...मुझसे?...किस बात की?

पुतुल ने कुछ काँपते हुए स्वर में कहा—नहीं इन्दु बाबू, ऐसा न कहिये। मैंने खूब सोचा है, आप ने ठीक किया था।

इन्दु ने कहा—उस बात को मत छेड़ो। मैं स्वयं...

पुतुल ने बात काटते हुए कहा—कैसे नहीं इन्दु बाबू? मैं कैसे भूल जाऊँ!

फिर तीन-चार मिनट तक कोई कुछ नहीं बोला। तब पुतुल ने ही उस मौन को तोड़ा—आप मुझे एक भीख देंगे इन्दु बाबू?

इन्दु की समझ में कुछ नहीं आया। वह एक ओर को नजर फेरे चुपचाप बैठा रहा। अपनी जगह पर उसे डर भी लग रहा था कि घर वाले अगर कहीं देख लेंगे तो क्या कहेंगे! तभी उसके कान में पुतुल के शब्द पड़े—आप मेरी हाशी को बचा लीजिए। मेरी हाशी को बचा लीजिए इन्दु बाबू, आप ही उसे बचा सकते हैं? वह अभी बच्ची है,

अभी उस पर पाप की छाया नहीं पड़ी है, उसे इस नरक-कुंड से निकाल लीजिए इन्दु बाबू !...पुतुल ऐसे जल्दी-जल्दी बोल रही थी कि जैसे कोई बीच ही में उसका गला घोंट देगा।

बात खतम करते-करते पुतुल की आँखों से झर-झर झर-झर आँसू बहने लगे।

इन्दु का मन भी आर्द्र हो आया और एक बार बड़े जोर से उसका जी हुआ कि आगे बढ़ कर, पुतुल को अपनी बांहों में लेकर उसके बकुल-सुगंधित बालों में हाथ फेरे और पुचकारकर कहे—चुपचुप, रोते नहीं पगली ? लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?...लो, यह पानी लो मेरे हाथ से, और मुँह धो डालो। घबराओ मत, सब ठीक हो जाएगा। हाशी जैसे तेरी बहन वैसे मेरी बहन।

ये सारे शब्द उसके अंतस् में बने और वह पुतुल की ओर एक डग बढ़ा भी, मगर रुक गया। झाड़ियाँ, चट्टानें, संस्कार...इन्दु का मुँह न खुला...

उस क्षण पुतुल का रोम-रोम सहारा मांग रहा था। मगर हाय वह सहारा न आया न आया न आया। उन दो-चार क्षणों में पंचांग ने न जाने कितनी शताब्दियाँ उलट डालीं और आखिरकार पुतुल रोते-रोते ही दरवाजे की ओर मुड़ी और बुझती हुई दीपशिखा की तरह भभक कर बोली—जाने दीजिए, इन्दु बाबू ! भूल जाइए, भूल जाइए कि मैं कभी आयी थी।

इन्दु सिर झुकाये खड़ा रहा और पुतुल जिस अंधेरे से आयी थी, फिर उसी में लौट गयी।

इन दस बरसों में मेरी ज़िन्दगी ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं, मगर आज भी पुतुल मेरे दिल में रह-रह कर चिलक उठती है क्योंकि (आज आपको बतलाता हूँ) वह कमजोर, नपुंसक इन्दु मैं ही हूँ।

वंशदीप उर्फ़ घोड़े हँसते हैं

लाला छकौड़ीमल के बाप लाला पकौड़ीमल निहायत कैंडे के आदमी थे। पैसा बटोरने की ऐसी जन्मजात प्रतिभा विरलों ही में पायी जाती है। कुछ अजब नहीं कि जब पकौड़ीमल धरती पर गिरे हों, तब राह-खर्च के लिए (आख़िर दूर का सफ़र ठहरा !) अशर्फियों की एक गठरी भी साथ आयी हो। ज़रूर ऐसी ही कोई बात थी, क्योंकि दुनिया ने देखा, एकाएक उनके बाप कचौड़ीमल की तक़दीर खुल गयी, जैसे कोई बन्द दरवाज़ा फट से खुल जाय। ऐसे कहीं किसी की तक़दीर खुलती है ! लोग सारी ज़िन्दगी चौखट पर नाक रगड़ते रह जाते हैं, मगर तक़दीर का दरवाज़ा नहीं खुलता और यहाँ रातो-रात कचौड़ीमल क्या से क्या हो गये ! ज़रूर इसमें कोई-न-कोई गैबी खेल है ! कहीं-न-कहीं अदृष्ट का हाथ ज़रूर है !

और इसमें शक नहीं कि था, वर्ना यह कैसे मुमकिन हुआ कि वही कचौड़ीमल, जो अपने नाम को सार्थक करते हुए, खस्ता-कचौरी का ख़ोमचा लगाते थे, साल-भर के अन्दर-अन्दर शहर के एक मशहूर हलवाई हो गये, जिसके यहाँ ख़रीदारों की भीड़ लगी रहती थी। यक़ीनी बात है कि यह ख़ज़ाना पकौड़ी ही अपने संग लाया था, अशर्फ़ियों की शक्ल में न सही, तकदीर की शक्ल में सही, मगर था यह ख़जाना उसी का लाया हुआ। सब अपना-अपना भाग्य साथ लाते हैं और पकौड़ी भी अपना भाग्य साथ लाया था।

कचौड़ीमल ने अपने इस प्रबल भाग्यशाली बेटे का नाम अशर्फ़ीमल रखना चाहा था, लेकिन बड़े-बूढ़ों ने समझाया कि इससे अहंकार की गन्ध आती है और अहंकार बुरी चीज़ है। इसलिए कचौड़ीमल ने बड़े-बूढ़ों की सलाह मानकर बेटे का नाम पकौड़ीमल रख दिया।

शहर के नामी हलवाई कचौड़ीमल का बेटा क्या कभी पकौड़ी बेच सकता है? मगर उससे क्या, आदमी को सर झुकाकर चलना चाहिये।

पकौड़ीमल में लक्ष्मी की आराधना की जन्मजात प्रतिभा थी, यह कहने से हमारा अभिप्राय है कि वे लक्ष्मी को बुलाना भी जानते थे और बुलाकर रोक रखना भी जानते थे। यह ठीक है कि बहुत बार ये दोनों गुण एक ही व्यक्ति में मिल जाते हैं, मगर कभी-कभी नहीं भी मिलते और फिर इस बात से कौन इनकार करेगा कि लक्ष्मी को एक बार बुला लेना फिर भी आसान है, बुलाकर रोक लेना ही टेढ़ी खीर है। इसी लिए हमारे ऋषियों ने लक्ष्मी को चंचला कहा है।

लेकिन उन्हीं ऋषियों ने अजामिल की कहानी भी तो कही है, जिसने मरते-मरते भूल से भगवान का नाम ले लिया तो उसका परलोक सुधर गया।

सो पकौड़ीमल को अजामिल की कहानी मालूम थी। नाम का महातम बड़ा है। नाम से अगर परलोक सुधर सकता है, तो इहलोक भी सुधर सकता है। सुधर सकता है क्या मतलब, सरीहन सुधरता है! उनसे पूछिए, जिनका नाम शुक्ल है, चतुर्वेदी है, कौल है, मेनन है! अजी नाम का महातम बड़ा है। और मैं पूछता हूँ, अगर विष्णु का नाम स्मरण करने से विष्णु आ सकते हैं, तो लक्ष्मी का नाम सुमिरने से लक्ष्मी क्यों नहीं आ सकतीं? और यदि हर समय उन्हीं का नाम सुमिरते रहा जाय, तो फिर जा भी कैसे सकती हैं?

इस बात को ध्यान में रखकर विद्वान सेठजी ने लक्ष्मी से ही विवाह कर लिया। नहीं, दैवी नहीं, मानुषी लक्ष्मी से।

इतिहासकार को कहना होगा कि रामजी ने यह जोड़ी खूब ही अच्छी मिलायी। और वह हर दृष्टि से अत्यन्त फलवती सिद्ध हुई।

नाम के निरन्तर जाप से पकौड़ीमल ने चंचला लक्ष्मी को पूर्णतः अपने वश में कर लिया। और लक्ष्मी के पूर्णतः वश में आ जाने से घर रत्न-राशि से भर चला और जहाँ दूसरे रत्नों की प्राप्ति हुई, वहाँ अनेकानेक कन्या रत्नों की भी, जिनके रूप-रंग में एक विलक्षण वैविध्य था।

उधर लक्ष्मी की बहुविधि सेवा से, छल से, प्रपंच से, सूद-दर-सूद से, फाडके से, रेहननामे और कुर्की से घर में सोने-चाँदी का अम्बार लगने लगा और इधर गृह लक्ष्मी की एकविधि सेवा से प्रतिवर्ष एक कन्या रत्न की निर्वाध उत्पत्ति होने लगी, जो पकौड़ीमल के लिए घोरतम मानसिक संताप का कारण था। हर बार जब दाई उन्हें आकर समाचार देती कि सेठानी जी को बिटिया हुई है तो उनके माथे पर शिकन पड़ जाती और उनका मुँह पाँच डिग्री टेढ़ा हो जाता। इस वक्त, शादी के दसवें साल में उनके माथे पर आठ शिकनें थीं, जिनमें से दो एक साथ पड़ी थीं, जब तीन बरस पहले

सेठानीजी को जुड़वाँ कन्याएँ हुई थीं...और (चिबुक को आधार मानते हुए) उनका मुँह चालिस डिग्री टेढ़ा था।

अपनी जाति में सेठ पकौड़ीमल की स्वभावतः बड़ी नामवरी हुई। लड़का हो चाहे लड़की, औलाद तो औलाद। औलाद यानी मर्दुमी का साटीफिटिक।

पता नहीं मजाक में या सच्चे दिल से अक्सर सेठजी की मित्र-मण्डली में उनकी आठ अदद बेटियों का ज़िक्र निकल आता और कोई किसी तरह उनकी पीठ ठोंकता, कोई किसी तरह, लेकिन जहाँ तक खुद सेठ पकौड़ी मल की बात थी, उनसे ज़्यादा दुखी आदमी संसार में दूसरा न था। और उसका कारण यही था कि भगवान की कृपा से आठ-आठ सन्तानों के रहते हुए भी उनका वंश चलने का उपाय न था, वंश तो पुत्र से चलता है, बेटी तो पराये घर की होती है। और भगवान ने उन्हें पुत्र एक नहीं दिया था। इसी चिन्ता में बेचारे घुलते जा रहे थे। तो भी उनकी धनोपार्जन की क्षमता पर कोई वैसा दर्शनीय प्रभाव नहीं पड़ा था। रकमों के उलट-फेर में उनके हाथ की सफ़ाई अब भी वैसी ही अक्षुण्ण थी। बाज़ार के चढ़ाव-उतार को उनका दिमाग़ अब भी उसी तरह, बिजली की तेज़ी से पकड़ता था और इसी लिए उनकी धनराशि दिन-दूनी-रात-चौगुनी बढ़ती जा रही थी। पर तो भी क्लेश उनके मन में था, सेठ पकौड़ी-मल के मन में।

और तभी सेठानीजी को नवीं बिटिया हुई। उसने सेठानीजी की तो नहीं, पर हाँ सेठजी की कमर तोड़ दी और करीब था कि वह संखिया खाकर सो जाते, मगर सेठानीजी के वैधव्य का विचार करके उन्होंने नहीं खायी, मगर इस बार एक रात में ही उनके माथे की आठ शिकनें चौदह हो गयीं और मुँह का कोण ६४.४८ डिग्री हो गया।

लेकिन भगवान की माया भी बड़ी विचित्र है। सेठ पकौड़ीमल जब अपने वंश के भविष्य की ओर से एकदम निराश हो चुके थे, तब उस चिर-अभिलषित व्यक्ति का आविर्भाव हुआ, जो सेठ पकौड़ीमल का वंश चलायेगा। ग़रज़ कि सेठजी की मुराद पूरी हुई। अब उनके पैर धरती पर न पड़ते थे। क्यों नहीं, उनका वंश अब चलेगा। क्या कभी हरखमल के बेटे गिरधारी मल के बेटे जीतमल के बेटे पूरनमासीमल के बेटे चुन्नीमल के बेटे कचौड़ीमल के बेटे पकौड़ीमल का वंश डूब सकता है? हर्षातिरेक में उन्होंने निश्चय किया कि मैं अपने बेटे का नाम करोड़ीमल रखूँगा। मगर फिर बड़े-बूढ़े आये और उन्होंने कहा, घमण्ड बुरी चीज़ है। आदमी को सर झुकाकर चलना चाहिए।

बात सेठजी की भी समझ में आ गयी और उन्होंने अपने बेटे का नाम छकौड़ीमल रख दिया।

छकौड़ीमल का नाम भले छकौड़ीमल रहा हो, मगर ठाट-बाट राजकुमारों जैसा था। इतने निहोरों से जिन्होंने दर्शन दिया, उनके ठाट-बाट के क्या कहने! कन्याओं के उस अन्तहीन मरुस्थल में छकौड़ीमल एक हरे-भरे उद्यान के समान थे। कन्याओं की उस हरहराती हुई प्रलयबाढ़ में छकौड़ी ही एक तिनके का सहारा थे। स्वभावतः उनके स्नेह-सत्कार की कोई सीमा नहीं थी। उन्हें पान की तरह फेरा जाता। सब उनको हाथों-हाथ लिये रहते। वे राजदुलारे थे, सबकी आँखों के तारे थे। चौबीस घंटे जो नाज़बरदारी, जो ले-लपक छकौड़ीमल के लिए होती थी, वह, राजकुमार किस खेत की मूली है, कोतवाल साहब के लिए भी नहीं होती। कहना होगा कि सेठ पकौड़ीमल ने बेधड़क अपनी थैली का मुँह खोल दिया था। बारह नौकर तो अकेले छकौड़ीमल पर तैनात थे। रेस के जीतनेवाले घोड़े पर भी इतने लोग क्या ही मुकर्रर होते होंगे, दाने-पानी के लिए दो-एक आदमी, मलने-दलने के लिए दो-एक

आदमी, घुमाने-फिराने के लिए दो-एक आदमी, बस बात खतम। मगर यहाँ तो पूरे एक दर्जन लोग थे। उन सबके अलग-अलग क्या काम थे, बतलाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि किसी को यह बात नहीं मालूम थी। मगर तब भी सबों ने अपनी समझ से कुछ-कुछ इस तरह काम बाँट लिया था। एक छकौड़ी की मालिश करता था दूसरा छकौड़ी को नहलाता था, तीसरा छकौड़ी के कपड़े बदलाता था, चौथा छकौड़ी को घुमाने ले जाता था, पाँचवाँ छकौड़ी की नाक पोंछता था, जी हाँ, यह भी एक पूरे वक्त का काम था और ग़ालिबन् इस पाँचवें आदमी को ही सबसे ज़्यादा कड़ी मेहनत पड़ती थी और इसी लिए नाक पोंछनेवाले का यह पद (बाइ अपॉइंटमेंट टु हिज़ रायल हाइनेस प्रिंस आफ़ वेल्स सेठ छकौड़ीमल !) किसी के लिए भी बहुत लोभनीय न था और जो क़िस्मत का मारा इस जगह पर आता, वह सदा तबादले की कोशिश में लगा रहता, ताकि उसे छकौड़ीमल नाम के महकमे में कोई दूसरी जगह दे दी जाय।

किस्सा कोताह, जो काम ऊपर बताये गये, वैसे ही और भी बहुत से काम थे, जो छकौड़ीमल की सेवकवाहिनी को व्यस्त रखते थे। मगर इस सेवकवाहिनी का सबसे अधिक समय परस्पर वाग्युद्ध करने में जाता था। एक के पास पिनपिनाते हुए छकौड़िया के लिए एक नुस्ख़ा था, तो दूसरे के पास कोई दूसरा नुस्खा और बारहवें के पास कोई बारहवाँ नुस्खा और बस महाभारत छिड़ जाता। रामप्रसाद छकौड़ीमल को एक कपड़ा पहनाता, तो रामदीन उसको उतारकर कुछ दूसरा और सीतला उसको भी उतारकर कोई तीसरा। कार्य का उचित विभाजन न होने के कारण एक-दूसरे के अनिश्चित या अर्द्ध निश्चित क्षेत्र पर इस प्रकार के हस्तक्षेप भी हर वक्त हुआ करते। मगर इसी सब में समय बड़े सुन्दर ढंग से कट जाता, छकौड़ी और उनकी सेवक-वाहिनी, दोनों का।

समय की धारा कब किसके लिए रुकी है ? इसी तरह मलते-दलते, रोते-गाते, खाते-पीते, नाक बहाते-नाक पोंछते......और बिस्तर पर ऐंड़ते अठारह साल बीत गये और तब एक रोज सेठ पकौड़ीमल के पास भगवानजी की चिट्ठी आयी कि आइए, अब यहीं गद्दी लगाइए। सेठ पकौड़ीमल ने वह चिट्ठी पढ़ी, तो बहुत उदास हो गये। उन्होंने चिट्ठी एक बार पढ़ी, दो बार पढ़ी, तीन बार पढ़ी और हर बार उन्हें उस निमंत्रण में आग्रह का सुर पंचम से धैवत और धैवत से निषाद पर चढ़ता हुआ सुन पड़ा। यह बात सेठ पकौड़ीमल को अच्छी नहीं लगी, क्योंकि उन्हें अपनी मर्त्यलोक की गद्दी ही ज़्यादा पसन्द थी। लेकिन क्या करते, दूसरी चिट्ठियों और भगवानजी की चिट्ठी में इतना अन्तर तो रहेगा ही।

हाँ, तो सेठ पकौड़ीमल उदास हो गये। अपने प्रिय पुत्र से सदा के लिए बिछुड़ जाने का विचार उन्हें और भी उदास बना रहा था। पर तब भी उन्हें इस बात का संतोष था कि उनकी वंशबेल सूखेगी नहीं। छकौड़ीमल के सम्बन्ध में इस समय यदि उन्हें कोई दुख था, तो यही कि अपने वात्सल्य के अतिरेक में उन्होंने छकौड़ी को व्यापार में वह दीक्षा नहीं दी, जो उन्हें देनी चाहिये थी। ग़लती हुई, उन्हें छकौड़ी से काम कराना चाहिये था।

लेकिन स्वयं छकौड़ी को इस बात का कोई दुःख नहीं था। और सच पूछिए, तो लम्बा मुँह बनाये रहने के बावजूद छकौड़ी को अपने पिता की आसन्न मृत्यु का भी कोई शोक नहीं था, क्योंकि वह उन थोथे भावुक लोगों में अपनी गिनती नहीं करता था, जिनके लिए हर

लेकिन अपनी उन अनेकानेक व्यस्तताओं में भी छकौड़ीमल को अपने दानवीर पिता की स्मृति निरन्तर कचोटा करती थी। और आखिरकार दानवीर बाप के दानवीर बेटे ने पिता की पुण्य स्मृति को अमर बनाने की दृष्टि से लोकहित में एक बड़ा निर्माण-कार्य कर डाला।

कैक्स्टन स्ट्रीट और बेनीराम भुनभुनिया स्ट्रीट जहाँ पर मिलती हैं, वहाँ पर घोड़ों के पानी पीने की एक छः फुट लम्बी और तीन फुट चौड़ी, छोटी-सी पत्थर की चरही बनी हुई है। यह निर्माण किस महान् आत्मा की स्मृति में हुआ है, पथिकों की इस सहज जिज्ञासा को शांत करने लिए चरही के ठीक ऊपर एक बारह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा विराट् पत्थर लगा हुआ है, जो बतलाता है कि अपने प्रातःस्मरणीय, पुण्यश्लोक पिता सेठ पकौड़ीमल की पावन स्मृति में सेठ छकौड़ीमल ने अमुक मास अमुक संवत् में यह चरही बनवायी।

चरही बनवाने में कुल ग्यारह रुपये चौदह आने का खर्च आया और नाम का पत्थर लगाने में पच्चीस रुपया, इस प्रकार कुल खर्च आया छत्तीस रुपये चौदह आने।

जीते जी सेठ पकौड़ीमल ने मनुष्य जाति पर अनेकानेक उपकार किये, मगर घोड़ों पर कोई उपकार नहीं किया। मरने के बाद उनके बेटे की इच्छा से वह कमी भी पूरी हो गयी। मगर आजकल के घोड़े तक एहसानफरामोश हो गये हैं। लिहाज़ा इस चरही पर आकर वे पानी तो कम पीते हैं, हँसते ज्यादा हैं, खूब दाँत निकाल-निकाल कर, जैसे घोड़े ही हँस सकते हैं।

सत्यमेव जयते

रजवन्तिया अपने ही खून के चहबच्चे में, ज़मीन पर बेहोश पड़ी थी और उसके सारे शरीर से खून के फ़ौवारे छूट रहे थे। गले में, दोनों छातियों में, पेट में, पीठ में, जाँघ में, कोई जगह न बची थी जहाँ छूरी न लगी हो। जालिम ने ताबड़तोड़ एक मिनट में सात वार किये, जैसे मुर्दा गोश्त के टुकड़े कर रहा हो, और भाग खड़ा हुआ।

और रजवन्तिया अपने ही खून के चहबच्चे में दम-तोड़ती हुई बेहोश पड़ी रही। बाल खुले और खून में लिथड़ते हुए, कपड़े फटे, अंग-अंग से खून जारी, मुँह खुला हुआ, आँखें बन्द।

इतवार का दिन था, अक्तूबर का महीना, तीसरे पहर यही कोई तीन-साढ़े तीन का वक्त होगा। अहियापुर की गुंजान बस्ती और फिर भी मजा यह कि दिन-दोपहर खून हो गया और खूनी साफ बचकर

मृत्यु असामयिक होती है। यदि हर मृत्यु असामयिक होती है, तो फिर सामयिक मृत्यु किसे कहते हैं? करोड़ों रुपए की सम्पति खड़ी कर ली, बैंक में अकूत रुपया हो गया, घर के तहख़ाने में सोने-चाँदी की ईंटों का अंबार लग गया, तमाम कम्पनियों में लाखों रुपये के शेयर हो गये, तीस लाख का जीवन बीमा हो गया, पचीस लाख के सरकारी कैश सार्टीफ़िकेट खरीद लिये, जिन्दगी के सारे मजे ले लिये, सारे तीरथ-नहान कर लिये, लड़कियाँ सब बर-बियाह कर अपने-अपने घर चली गयीं, गिरस्ती सँभालने के लिए घर का लड़का बड़ा हो गया......अब और क्या चाहिये? सामयिक मृत्यु और कैसी होती है? मरना तो सभी को है एक दिन, अमृत की घरिया पीकर तो कोई आया नहीं है!

छकौड़ी का कहना बिलकुल ठीक है। सेठ पकौड़ीमल की मृत्यु के लिए यही घड़ी सबसे शुभ है। उन्हें अब एक दिन की भी देरी नहीं करनी चाहिये।

छकौड़ी के मन में तो यही बात थी, मगर लोक-लाज के मारे लम्बा सा मुँह बनाये घूम रहा था, जैसे उससे अधिक शोकार्त्त प्राणी संसार में दूसरा न हो। पर अभिनय की कला में भी वह कच्चा ही था। और यह बात मरणासन्न पिता के संग वार्त्तालाप के दूसरे वाक्य में ही खुल गयी, मगर खैरियत यही थी कि कोई उसे पकड़ नहीं सका।

पिता ने आँसू पोंछकर भर्राये हुए स्वर में कहा—बेटा...

पुत्र ने और भी भर्राये हुए स्वर में कहा—बप्पा......यहाँ तक तो ठीक था, मगर जब पिता ने प्रेम में पगे हुए स्वर में पूछा—मैं नहीं रहूँगा, तो तुम्हें कैसा लगेगा, छकौड़ी?

तब छकौड़ी ने अपने पिता को न तो ऐसी बात कहने से रोका, न कोई दम-दिलासा देने की कोशिश की, बल्कि काफ़ी नाटकीय शैली

में अपने पितृ-प्रेम की घोषणा की—बप्पा...तुम नहीं रहोगे, तो मुझे बड़ा दुख होगा !

बप्पा के प्राण शायद पुत्र की यही भाव-विह्वल वाणी सुनने के लिए अटके हुए थे। उन्हें कहानियों में वर्णित तीनों हिचकियाँ आयीं और वे स्वर्ग सिधार गये।

सेठ पकौड़ीमल की मृत्यु उनके लिए भले सामयिक न रही हो, पर उनके उत्तराधिकारी सेठ छकौड़ीमल के लिए तो अवश्य सामयिक थी। उन्हें अब वह स्वतंत्रता चाहिए थी, जो पिता के रहते किसी प्रकार संभव न थी।

अपनी सेवकवाहिनी के संसर्ग में नारी देह और नर-नारी के संबंध को लेकर जो विशद, सचित्र, सुललित चर्चा उसके कानों में छुटपन से ही पड़ती रही थी, उस मधु-क्षरण ने किशोर छकौड़ी के मन में अनेक रंग-बिरंगी पहेलियों की सृष्टि कर दी थी। अब उन पहेलियों के अर्थ खुलने के दिन आये थे और करोड़पति बुड्ढा बाप मरने का नाम ही न लेता था ! और सेठ पकौड़ीमल मर गये, तो छकौड़ीमल को इतनी मर्म-व्यथा हुई कि उन्हें विवश होकर सुरा और सुन्दरी की सँकरी गली पकड़नी पड़ी।

पकौड़ीमल को अपना वंश चलने की बड़ी चिन्ता थी, सो पितृ-भक्त छकौड़ी ने सोचा कि इस काम को जरा बड़े पैमाने पर करना चाहिए। फलतः उन्होंने विवाह न करने का व्रत ले लिया। और आज देश-देशान्तर में न जाने कहाँ-कहाँ, किस-किस गली-कूचे में हरखमल के बेटे गिरधारीमल के बेटे जीतमल के बेटे पूरनमासी मल के बेटे चुन्नीमल के बेटे कचौड़ीमल के बेटे पकौड़ीमल का वंश फल-फूल रहा है।

लेकिन अपनी उन अनेकानेक व्यस्तताओं में भी छकौड़ीमल को अपने दानवीर पिता की स्मृति निरन्तर कचोटा करती थी। और आखिरकार दानवीर बाप के दानवीर बेटे ने पिता की पुण्य स्मृति को अमर बनाने की दृष्टि से लोकहित में एक बड़ा निर्माण-कार्य कर डाला।

कैक्स्टन स्ट्रीट और बेनीराम झुनझुनिया स्ट्रीट जहाँ पर मिलती हैं, वहाँ पर घोड़ों के पानी पीने की एक छः फुट लम्बी और तीन फुट चौड़ी, छोटी-सी पत्थर की चरही बनी हुई है। यह निर्माण किस महान् आत्मा की स्मृति में हुआ है, पथिकों की इस सहज जिज्ञासा को शांत करने लिए चरही के ठीक ऊपर एक बारह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा विराट् पत्थर लगा हुआ है, जो बतलाता है कि अपने प्रातःस्मरणीय, पुण्यश्लोक पिता सेठ पकौड़ीमल की पावन स्मृति में सेठ छकौड़ीमल ने अमुक मास अमुक संवत् में यह चरही बनवायी।

चरही बनवाने में कुल ग्यारह रुपये चौदह आने का खर्च आया और नाम का पत्थर लगाने में पच्चीस रुपया, इस प्रकार कुल खर्च आया छत्तीस रुपये चौदह आने।

जीते जी सेठ पकौड़ीमल ने मनुष्य जाति पर अनेकानेक उपकार किये, मगर घोड़ों पर कोई उपकार नहीं किया। मरने के बाद उनके बेटे की इच्छा से वह कमी भी पूरी हो गयी। मगर आजकल के घोड़े तक एहसानफ़रामोश हो गये हैं। लिहाज़ा इस चरही पर आकर वे पानी तो कम पीते हैं, हँसते ज्यादा हैं, खूब दाँत निकाल-निकाल कर, जैसे घोड़े ही हँस सकते हैं।

सत्यमेव जयते

रजवन्तिया अपने ही खून के चहबच्चे में, ज़मीन पर बेहोश पड़ी थी और उसके सारे शरीर से खून के फ़ौवारे छूट रहे थे। गले में, दोनों छातियों में, पेट में, पीठ में, जाँघ में, कोई जगह न बची थी जहाँ छूरी न लगी हो। जालिम ने ताबड़तोड़ एक मिनट में सात वार किये, जैसे मुर्दा गोश्त के टुकड़े कर रहा हो, और भाग खड़ा हुआ।

और रजवन्तिया अपने ही खून के चहबच्चे में दम-तोड़ती हुई बेहोश पड़ी रही। बाल खुले और खून में लिथड़ते हुए, कपड़े फटे, अंग-अंग से खून जारी, मुँह खुला हुआ, आँखें बन्द।

इतवार का दिन था, अक्तूबर का महीना, तीसरे पहर यही कोई तीन-साढ़े तीन का वक्त होगा। अहियापुर की गुंजान बस्ती और फिर भी मजा यह कि दिन-दोपहर खून हो गया और खूनी साफ बचकर

निकल गया। मगर शायद किसी राहगीर ने खूनी को भागते हुए देखा क्योंकि एक बार बड़े ज़ोर का शोर उठा—खून खून ..... दौड़ो दौड़ो.... पकड़ो...

देखते देखते वहाँ एक बड़ी-सी भीड़ जमा हो गयी। जो कच्चे दिल के थे वह एक नज़र डालकर और एक-दो बात पूछकर अपनी राह लगे। जो ज़रा पोढ़े दिल के थे वह इत्मीनान के साथ हर चीज की जाँच करने लगे। एक महाशय जिन्हें थोड़ी-बहुत फर्स्ट एड आती थी, गला फाड़ फाड़कर चिल्लाने लगे—आप लोग क्यों खामखा भीड़ लगाये हुए हैं? घायल को हवा तो मिलने दीजिये। छोड़िये छोड़िये, रास्ता छोड़िये......

भीड़ में से कोई बोला—अरे, अब वहाँ क्या धरा है। किसके लिए रास्ता छुड़वाते हो?

उन महाशय को गुस्सा आ गया, बोले—अच्छा साहब कुछ नहीं धरा है तो आपकी बला से मगर मैं आपसे पूछता हूँ कि यहाँ क्या बन्दर का नाच हो रहा है जो आपने भीड़ लगा रखी है—

भीड़ वाला आदमी भी शायद बहुत तेज़ मिज़ाज था। बात तो समझा नहीं, उल्टा-पुल्टा कुछ का कुछ समझ गया, गरम पड़ते हुए बोला—बन्दर होगे तुम, तुम्हारे सात पुरखे...

मगर खैर, वहाँ जुटनेवालों में कुछ समझदार भी थे। एक आदमी इस बीच शहर कोतवाली को दौड़ गया था और दूसरा कालविन अस्पताल को। एक आदमी हवा कर रहा था। एक नौजवान, जो शायद यूनिवर्सिटी का विद्यार्थी था, घायल के मुंह पर पानी के छींटे मार रहा था और बहुत डरते-डरते अपनी जानकारी भर, खून रोकने का कुछ कुछ उपाय भी कर रहा था, मगर वहाँ तो तसला-तसला भर खून जा रहा था, कहाँ कहाँ रोकता?

तमाशाइयों की उस भीड़ में टीका-टिप्पणी का बाज़ार गर्म था। जितने मुंह थे उतनी बातें। उसी मुहल्ले के आस पास के जो लोग थे, वे यह अटकल लगा रहे थे कि यह किसका काम हो सकता है लेकिन तभी भीड़ ही के किसी आदमी की एक जोड़ा क्रूर-कुटिल आँखें उन्हें घूरने लगतीं और वे इधर-उधर की कुछ दूसरी बातें करने लग जाते और अपने मन में कहते—ये खून-खच्चर के मामले बहुत ख़राब होते हैं। इनसे दूर ही रहना अच्छा. . . .

एक कोई था जो उस घायल स्त्री के रूप पर ही आसक्त था। किस क़दर भोंडी बात है मगर क्या किया जाय, यह तो दुनिया है। लेकिन भई, इसमें शक नहीं कि रजवन्तिया थी भी बड़ी खूबसूरत औरत, लम्बी, छरहरी, साफ़ गन्दुमी रंग, पुष्ट गोल वक्ष, बड़ी बड़ी काली काली आँखें और ठुड्डी के ठीक बीचोबीच गुदाया हुआ एक हरा हरा-सा तिल—मगर इस वक़्त क्या, इस वक़्त तो वह सिर्फ़ एक टूटती हुई साँस थी, गोश्त का एक लोथड़ा जिससे खून रिस रहा था। तो भी कोई था जो उसके रूप पर आसक्त था। उसी तरह एक लालाजी थे जिनके गले से हर अढ़ाई मिनट पर वही एक बात निकल रही थी—आखिर कहां रह गये थे पुलिसवाले? और डाक्टर का भी तो पता नहीं। शायद ही बचे. . . . .

तभी ऐम्बुलेंस की गाड़ी में पुलिस आती दिखायी दी। पुलिस अभी साठ-सत्तर गज़ दूर ही थी, मगर भीड़ खिसकने लगी। कोई तो बोला भी—अरे भाई, इनका कुछ ठीक नहीं, चाहे जिसको सान दें। पुलिस की और शैतान की ज़ात एक।

भीड़ छंटी तो शम्भू को भी कोठरी के अन्दर पड़ा हुआ वह शरीर ठीक से दिखायी दिया और उसे देखते ही शम्भू के मुंह से बेसाख़्ता निकल गया—अरे बेचारी रजवन्तिया! किसने इससे दुश्मनी निकाली!

आसपास के तमाम लोग चौंक गये और उन्होंने बहुत घूरकर शम्भू की ओर देखा जैसे उसके उस सीधे-सादे वाक्य का छिपा हुआ मतलब उसके चेहरे पर पढ़ रहे हों।

किसी ने पूछा—रजवन्तिया कौन ?

शम्भू ने बड़ी सादगी से जवाब दिया—मेरी धोबिन. . . .

तब तमाशाइयों में किसी ने किसी से कहा—कहना होगा, निगाह है बाबू साहब के पास।

उस आदमी ने जवाब दिया—मगर अब क्या यार ! अब तो सिर्फ़ पींजरा रह गया !

तब तक गाड़ी मौके पर पहुँच गयी थी। पुलिसवाले गाड़ी में से उतरे और उनके साथ काल्विन अस्पताल का छोटा डाक्टर। और फिर डाक्टर अपना काम करने लगा और पुलिस अपना काम करने लगी। डाक्टर तो फौरन मरहम-पट्टी में लग गया और पुलिस ? पुलिस को तो तैयार करनी थी अपनी रपट, लिहाज़ा उन्होंने मुझसे तुझसे, जो ही मिला उसी से, इस वारदात के बारे में पूछना शुरू कर दिया।

दारोग़ा साहब ने पहला सवाल किया—क्या यह औरत इस घर में अकेली रहती थी ?

शम्भू ने, जो कुतूहलवश और भी क़रीब चला आया था, जवाब दिया—जी नहीं, अपने आदमी के साथ।

दारोग़ा-साहब ने कड़ककर पूछा—तो फिर कहाँ गया इसका आदमी ?

शम्भू सिटपिटा गया, बोला—मैं क्या जानूँ साहब। कहीं गया होगा।

तभी एक दूसरे आदमी ने बतलाया कि धोबिन का आदमी सबेरे ही से घाट गया हुआ है।

दरोग़ा साहब की त्यौरियों के बल कम नहीं हुए। बोले—क्या खूब घाट गया हुआ है।

शम्भू ने अपनी समझ में दरोग़ा साहब की बात में बात मिलाते हुए कहा—ठीक तो कहते हैं दरोग़ा साहब। आदमी तो गया हुआ है घाट और यहाँ...मगर हुजूर यह भी तो एक हद हो गयी... इस तरह दिन-दोपहर...अहियापुर-जैसी गुंजान बस्ती में।... इसका तो मतलब हुआ कि किसी की जान-माल की कोई हिफ़ाज़त ही नहीं...

दरोग़ा साहब को यह बात तमाम पुलिस महकमे के लिए यानी खुद अपने लिए भी एक लांछन-सी सुन पड़ी। गुस्से में आते हुए बोले—खैर यह तो आपका खयाल है बाबू साहब!...आपकी जान-माल की हिफ़ाज़त के लिए पुलिस न हो तो कहीं ठिकाना न मिले। यह पुलिस की रोक-थाम ही है कि जरायम बढ़ने नहीं पाते।

तब उस नौजवान ने, जो डाक्टर साहब के आने के पहले खून को रोकने का उपाय कर रहा था और अब वहीं पास ही बैठा घायल को हवा कर रहा था, कहा—मगर जरायम तो बराबर बढ़ रहे हैं दरोग़ा साहब? चोरी-डकैती-क़त्ल, सभी कुछ...और मैं तो दरोग़ा साहब गाँव का रहने वाला हूँ। वहाँ की हालत तो शहरों से भी बुरी है। दस रुपये में चाहे जिसका खून करवा दीजिये....

दरोग़ा साहब को गुस्सा तो इतना आ रहा था कि बस चलता तो इन सब को कच्चा ही चबा जाते। मगर खैर, बोले—सब कहने की बातें हैं...मानता हूँ कि जरायम बढ़ रहे हैं, मगर क्या आप कह सकते हैं कि पुलिस न होती तो और भी कितना बुरा हाल न होता?

इस सवाल का वाक़ई कोई जवाब न था। मगर तो भी विद्यार्थी ने अपनी ज़िद न छोड़ी। बोला—वह बात और है, मगर मैंने तो दरोग़ा साहब, बहुत बुड्ढे-बुड्ढे लोगों को यह कहते खुद अपने कानों से

सुना है कि इससे अच्छा तो कम्पनी का राज़ था। उसमें जान-माल की हिफ़ाज़त तो थी। एक बार बच्चा भी चाहे तो आधी रात को शहर का चक्कर लगाकर चला आवे, कोई बाल को हाथ नहीं लगा सकता था।

शम्भू ने नौजवान की बात की तसदीक़ की—आप ठीक कहते हैं। मैंने भी दफ़्तर में लोगों को यह कहते सुना है।

दरोग़ा साहब ने पूछा—आप किस दफ्तर में काम करते हैं?

शम्भू ने धीरे से कहा—इनकम टैक्स के दफ्तर में...

दरोग़ा—वह भी तो सरकारी महकमा है...

शम्भू—जी हाँ...जी हाँ।

दरोग़ा—शर्म नही आती, अपनी ही सरकार के खिलाफ़ बदगुमानी फैलाते हो, ऊपर से कहते हो जी हाँ!

विद्यार्थी शम्भू की हिमायत में बोला—दरोग़ा साहब, क्यों नाहक गरम हो रहे हैं! ऐसा क्या कह दिया बेचारे ने!

दरोग़ा साहब ने देखा कि इस तरह तो कभी बहस का अन्त नहीं होगा। इसलिए उन्होंने फिर अपनी जाँच-पड़ताल शुरू की। लेकिन अभी मन में विष तो भरा ही था, और फिर पुलिस का कायदा, इसलिए हर बात जो वह कर रहे थे उसमें एक ख़ास गुस्सा और चिढ़ और सिरके की-सी तेज़ी थी।

उन्होंने पूछा—क्या उम्र रही होगी इस औरत की?

विद्यार्थी ने दरोग़ा साहब को टोका—रही होगी क्यों कहते हैं साहब?

शम्भू ने कहा—मैं तो समझता हूँ यही पचीस-छब्बीस......

दरोग़ा—इसके कोई बाल बच्चे नहीं हुए क्या?

शम्भू—हुजूर यह तो दूसरा घर किया है इसने। और अभी दिन भी तो ज़्यादा नहीं गुज़रे। सुनता हूँ पहले मर्द से इसके एक लड़का हुआ था, जो जाता रहा।

दरोग़ा साहब ने आँखें नचाते हुए कहा—अच्छा तो यह दूसरा मर्द है?......

तभी डाक्टर बोला—चलिये, दरोग़ा साहब, अब इसको अस्पताल ले चलें। खून रोक तो दिया है मगर पहले ही बहुत खून जा चुका है। ब्लड ट्रांसफ्यूजन करना होगा। देर करना ठीक नहीं।

दरोग़ा साहब ने चलते-चलते पुलिस का दबदबा मुहल्ले के लोगों पर क़ायम करने की ग़रज़ से खूब कड़ककर कहा—हम लोग अस्पताल जा रहे हैं। मगर जाते जाते मैं आप लोगों को ताकीद किये देता हूँ कि अगर इस किस्म की वारदात किसी मुहल्ले में होती है तो मुहल्लेवाले भी उसकी ज़िम्मेदारी से बरी नहीं हो सकते। इसलिये मैं आपसे दरख्वास्त करूंगा कि क़ातिल को पकड़ने में हमारी मदद कीजिये। अब हम आज़ाद हिन्दुस्तान में रहते हैं। अब कोई विदेशी हुकूमत नहीं है और न हम यहाँ पर जंगल का राज चलने देंगे कि कोई दिन-दहाड़े आकर किसी बेकस का खून कर जाय। आपकी जान-माल की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी हमारी है। हम आपके हैं और आप हमारे। क़ातिल अभी हमारी पकड़ में नहीं आया है मगर घबराइये मत पुलिस का जाल हिन्दुस्तान भर में फैला हुआ है। खूनी जहाँ कहीं भी छिपा होगा हम उसे पकड़ लायेंगे। पुलिस की बांहें बहुत लम्बी हैं। आप एक बार मौत की बांहों से बच सकते हैं, पुलिस की बांहों से नहीं बच सकते।

इस चेतावनी के साथ दरोग़ा साहब ने रजवन्तिया को ऐम्बुलेंस की गाड़ी में रखवाया और खुद भी उसी तरफ़ चले। और यकायक शम्भू की तरफ मुखातिब होते हुए बोले—और चलिये जनाब, आप ज़रा हमारे साथ कोतवाली तक चले चलिये। इनायत होगी। आपको तो इस औरत के बारे में बहुत मालूमात हैं। आपका बयान लेना ज़रूरी है।

यह कहते कहते एक बार फिर रमलू के चेहरे पर खून उतर आया।

बड़े दरोग़ा जी बोले—कालेपानी से कम न होगा।

रमलू ने कहा—अब जो हो सरकार। वह तो आप के हाथ में है। आप जो चाहेंगे वही होगा।

बड़े दरोग़ा जी बोले—हम कौन होते हैं चाहने वाले। हमारे हाथ में क्या है। जो करेगी अदालत करेगी...

रमलू ने कहा—आपही तो अदालत की आँख हैं हुज़ूर...

थानेदार साहब बोले—अबे साले हमसे पूछकर काम किया था! ...अच्छा यह तो बता तू ने खून किया क्यों? वह औरत कौन थी तेरी?

रमलू ने हाथ जोड़ते हुए कहा—आपको मालूम नहीं सरकार, वह मेरी ही तो औरत है। उससे एक लड़का भी था सरकार, पर वह हमारे भाग का नहीं था, मालिक ने उठा लिया। अभी कुछ महीनों ही की तो बात है वह दूसरे के घर बैठ गयी।

बड़े दरोग़ा जी ने कुतूहल से पूछा—क्यों भला?...बहुत पीटते-पीटते होगे तुम...

रमलू—तो क्या हुआ? हमारी बिरादरी में तो एक कहावत चलती है कि घर के गदहे और घर की जोरू को एक ही डंडे से पीटना चाहिये। मैंने कोई नयी बात थोड़े ही की। कौन धोबी नहीं पीटता अपनी जोरू को—मुंगरी से पीटते हैं, मुंगरी से। मगर इतने ही से क्या कोई दूसरा घर कर लेता है?

थानेदार साहब ने गोया रमलू को समझाने की ग़रज़ से कहा—औरतें भी तो सब एक-सी नहीं होतीं रमलू...और फिर तेरी औरत देखने-सुनने में थी भी तो हज़ार में एक।...

रमलू छाती फुलाकर तनते हुए बोला—तो मैं ही किससे घटकर हूँ थानेदार साहब ? मैं भी तो बकरी का दूध नहीं पीता सरकार ! मेरे शरीर में क्या किसी से कम तागद है ?......या मैं निखट्टू हूँ, कमाता नहीं धमाता नहीं......तब फिर मुझे छोड़ कर क्यों गयी वह हरामज़ादी रजवन्तिया ?......रमलू को धोखा देना आसान समझा है क्या ? बोटी-बोटी काटकर फेंक दूँगा, हरामज़ादी, कुतिया कहीं की ! मेरी औरत मेरे जीते-जी दूसरे के साथ सोये, यह नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। चाहे फिर मुझे फांसी ही क्यों न लग जाये। सरकार, क्या गरीब आदमी की कोई आबरू ही नहीं ?

थानेदार और बड़े दरोगा जी दोनों ही को रमलू से हमदर्दी हुई।

कुछ देर खामोशी छायी रही और उस खामोशी में एक के दिल ने दूसरे के दिल से सीधे-सीधे बात कही : मर्द का अपनी औरत को पीटना, डण्डे से ही सही, वैसी कोई बड़ी बात नहीं। थोड़ा-बहुत सभी पीटते हैं। कौन मर्द है जो अपनी औरत को बिलकुल नहीं पीटता—और अगर हो तो फिर मर्द ही कैसा ?......आप ही कहिए दरोग़ा जी, आप क्या अपनी बीबी को नहीं पीटते......और फिर आप ही कहिए अगर सिर्फ इतनी-सी बात पर आपकी बीबी आपको छोड़कर किसी और के संग रहने लगे तो आपको कैसा लगेगा ?......और फिर ऐसे मर्द आदमी को डामुल या कालेपानी भेजकर होगा भी क्या ?......वह तो आप ही सर पर कफ़न बाँधे बैठा है......इसमें तो किसी का भी कोई फ़ायदा नहीं......

दोनों के दिल में रमलू के लिए हमदर्दी थी सही, मगर यह बात उन्हें बुरी लगी कि वह ठीक उनके सामने बैठकर, मूँछ पर ताव देकर ऐसी सरकशी की बातें करे। ज़रा इसका गुर्दा तो देखो। इसको अंकुश के नीचे रखना ज़रूरी है। इसी ख़्याल से थानेदार साहब ने उसे ज़ोर से डपटा—अबे बन्द भी कर ! अभी उठाकर हवालात में बन्द कर दूँगा तो आटे दाल का भाव मालूम हो जायगा। बड़ा आबरू वाला बना

फिरता है। जैसे आबरू एक इन्हीं के पास तो है और बाक़ी सारी दुनिया बेहया, बेग़ैरत है।

बड़े दरोगा जी ने दूसरा तरीक़ा अपनाया, जैसे उनमें और थानेदार साहब में पहले से सधी-बधी हो। बड़े भाई-चारे के अन्दाज़ में और नर्मी से अपनी बात समझाने के ढंग पर उन्होंने कहा—थानेदार साहब बहुत सही कहते हैं रमलू। हमारी भी तो आबरू है। हमको भी तो अपनी कार्रवाई करनी पड़ेगी। जुर्म तो तुमने बहुत संगीन किया है, बहुत ही संगीन।

रमलू ने बड़ी दीनता से कहा—मेरी जिन्दगी तो अब आपके हाथ है सरकार, चाहे बनायें चाहे बिगाड़ें। मेरी किस्ती के खेवैया तो अब आप ही हैं।

इस पर बड़े दरोग़ा जी को दिल में तो बड़ी झुंझलाहट हुई, बड़ा गुस्सा आया और गाली जबान पर आ आकर रह जाती—क्यों बे साले, हरामी के पिल्ले, रमलू-टमलू कहीं का! हमसे पूछकर गया था खून करने, मादर......?

दारोगा जी ने मेज के नीचे धीरे से थानेदार साहब का हाथ दबाया। कहने का मतलब था कि तुम्हारे इलाके का असामी है, तुम्हीं बात करो—मगर देखना, जाल को जरा अच्छी तरह छितरा कर फेंकना ताकि मछली आ ही जाय।

थानेदार साहब बोले—देखो रमलू तुम कोई बच्चे नहीं हो। तुम्हारा जुर्म भी कोई ऐसा-वैसा नहीं है......इसमें आठ-दस साल की सजा तो मामूली बात है, रोज ही देखते हैं हम लोग......तुम अभी जवान हो। तुमको जेल भेजकर हमें तकलीफ होगी, लेकिन किया भी क्या जाय, ड्यूटी भी तो कोई चीज है। क़हीं आठ-दस साल जेल में सड़ना पड़ गया तो लठिया टेकते बाहर निकलोगे। बड़ा तरस आता है हमको तुम्हारी जवानी पर मगर जुर्म तुमने बहुत संगीन किया है......

किसी की जान लेना......मगर खैर हम समझते हैं कि बहुत बार आदमी गुस्से से पागल होकर इस किस्म की हरकत कर बैठता है...... लेकिन हमारे समझने से क्या होता है, बहुत मुमकिन है अदालत इस चीज को इस तरह न देखे......जो कि फिर तुम्हारे लिए एक खतरनाक बात हो जायेगी। समझ लो। बात बहुत काफ़ी फैल गयी हैं और जाने क्यों हर आदमी का शक सबसे पहले तुम्हीं पर जाता है और तुम तो, जानते हो......

रमलू ने कहा—हजूर, मैं तो आपका गुलाम हूँ। मेरे तो बादशाह आप ही हैं। आपकी नजर हो जायेगी तो कोई मेरा बाल भी नहीं छू सकेगा। बस आपकी नजर होनी चाहिए। अब आप चाहे पास करें चाहे फेल।

थानेदार साहब को एक झटके का नशा चढ़ गया मगर ज़ाहिर उन्होंने ऐसा किया कि जैसे इन बातों का उनके ऊपर कोई असर न हो। बोले—वह सब बातें रहने दो रमलू। उनका वक़्त बीत गया। जुर्म तुमने बड़ा किया है और कानून की बांहें बहुत लम्बी होती हैं......इतना बड़ा मामला दबाना कोई आसान काम नहीं......और फिर कानून की देवी को चढ़ाने के लिए फूल-अच्छत भी तो लगेगा......

रमलू बोला—मैं कब आपसे बाहर हूँ हुजूर। हुकुम कीजिए।

बात एक हज़ार रुपये पर पक्की हुई जो रमलू ने अड़तालिस घण्टे के अंदर लाकर थानेदार साहब को दे दिये। थानेदार साहब ने रमलू से यह पूछना भी ज़रूरी नहीं समझा कि अड़तालिस घण्टे के अन्दर वह इतने रुपये कहाँ से ले आया। उन्हें आम खाने से मतलब कि पेड़ गिनने से। लाया होगा जहाँ से लाया होगा। कहीं से क़र्ज़ किया होगा, नक़ब लगाया होगा, डाका मारा होगा, मुझे क्या, मेरे हलके में तो नहीं किया, जिसके हलके में किया होगा, वह आप अपनी फिक्र कर लेगा।

अब तक बड़े दरोग़ा जी कान में तेल डाले पड़े थे, जैसे कोई बात ही न हुई हो। तीन रोज हो गये मगर अब तक पुलिस के किसी रजिस्टर में इस वारदात का इन्दराज न था, पहली रिपोर्ट भी नहीं लिखी गयी थी।

अब न जाने कहाँ से दरोगा जी में एकाएक बड़ी मुस्तैदी दिखायी देने लगी और उन्होंने उसी रोज़ अस्पताल में जाकर रजवन्तिया का बयान लिया।

रजवन्तिया जौजे सीतल धोबी ने राजी-खुशी से, बगैर किसी जोर-जबर्दस्ती के, बिलकुल सही दिमाग़ में यह बयान दिया जो पुलिस ने अपने यहाँ दर्ज किया :

मैं अहियापुर में ६४।२१७ नम्बर के घर में रहती हूँ। घर में बस हमीं दोनों रहते हैं, धोबी और मैं।

हमारे घर के पास ही बाबू शम्भूनाथ का घर है। बाबू शम्भूनाथ का कपड़ा हमीं धोते हैं। बाबू शम्भूनाथ कहीं किसी दफ्तर में नौकर हैं। किस दफ्तर में? यह मुझे नहीं मालूम। बाबू शम्भूनाथ की उमर यही तीस की होगी, लेकिन शायद उनका ब्याह नहीं हुआ है, वह घर में एकदम अकेले रहते हैं। ऐसे सूने घर में मैं कभी कपड़ा नहीं देने जाती। वहाँ कपड़ा देने-लेने का जिम्मा मेरे आदमी का है। लेकिन कुछ ऐसा संजोग हुआ कि पिछले महीने धोबी बीमार पड़ गये और बाबू शम्भूनाथ के यहाँ कपड़ा लेकर मुझको जाना पड़ा। उस वक्त बाबू शम्भूनाथ भीतर वाली कोठरी में थे। दो कमरे हैं उनके कब्जे में। एक तो सामने वाला कमरा जो सड़क पर खुलता है और दूसरी एक कोठरी है, इसी कमरे से लगी हुई, भीतर को। जब मैं कपड़ा लेकर पहुँची उस वक्त बाबू शम्भूनाथ इसी कोठरी में थे। उन्होंने मेरी आवाज सुनी तो मुझसे कहा कि यहीं कपड़े ले आओ। अभी शाम तो घनी नहीं हुई थी, लेकिन घर एक दम अकेला था और इसलिए मुझे डर लग रहा था।

बाबू जी की बात सुनी अनसुनी कर दी और कपड़े वहीं रखकर बैठ गयी। मगर जब दूसरी बार उन्होंने और भी जोर से पुकार कर कहा—आती क्यों नहीं धोबिन ? साफ़ कपड़े मैले कपड़े सब यहीं रहते हैं।......तो फिर मैं क्या करती, मुझे कोठरी में जाना पड़ा। मुझे बड़ा डर लग रहा था, क्योंकि बाबू शम्भूनाथ पहले भी मेरे ऊपर ताक-झाँक किया करते थे। इसलिए मुझे बड़ा डर लग रहा था मगर मैं जल्दी-जल्दी कपड़े मिलवा रही थी कि कितनी जल्दी वहाँ से काम ख़त्म हो और मैं भागूँ... मगर कहाँ......अभी मैं मैले कपड़े लिखवा ही रही थी कि बाबू शम्भूनाथ ने लपक कर मेरी कलाई पकड़ ली और मुझे जबरन अपनी छाती से चिपका लिया। मैं औरत जात हूँ, इससे ज़्यादा और नहीं कह सकती। यह सब पलक मारते-मारते हो गया। मैंने अपने को छुड़ाने के लिए बड़ा ज़ोर लगया मगर छुड़ा न सकी तब मैंने बड़े जोर से उन बाबू साहब का हाथ काट लिया। बाबू साहब के मुँह से एक चीख़ निकली और उनका हाथ ढीला पड़ गया और मैं दरवाज़े की तरफ़ भागी। भागते-भागते मैंने देखा कि उस वक्त बाबू शम्भू नाथ के चेहरे से आग निकल रही थी। उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि जैसे कोई पागल जानवर हो। मैं भाग तो आयी मगर भागते-भागते मैंने सुना, बाबू शम्भूनाथ ने फुंकार कर कहा—तूने बुरा किया रजवन्तिया। याद रख इसका फल तुझे भुगतना पड़ेगा। (......जी हुजूर, बाबू शम्भूनाथ ने यह बात कही थी।) उस वक़्त उनकी आँखों से चिनगियां छूट रही थीं। इस बात को दस बारह रोज हो गये।......जिस दिन मेरे ऊपर हमला हुआ, मेरा आदमी घाट गया हुआ था और मैं अकेली थी। पता नहीं मेरी आँख लग गयी थी या क्या हुआ, शायद लग गयी हो मैं ठीक नहीं कह सकती, मैंने किसी को घर में घुसते नहीं देखा। जरूर मेरी आँख लग गयी थी क्योंकि इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैंने आँख खोली तो अपने सामने एक आदमी को छुरी लिये खड़ा

पाया।......फिर मुझे किसी बात का होश नहीं। होश आने पर मैंने अपने को अस्पताल में पाया। जी हाँ, हुजूर, मैं उस आदमी को जो छुरी लिये खड़ा था पहचानती हूँ और जरूरत पड़ने पर बीसियों लोगों के बीच से उसे पहचान लूँगी। मैं उस आदमी को बहुत बार बाबू शम्भूनाथ के घर से निकलते देख चुकी थी। उसे पहचानने में मुझे कोई तरद्दुद न होगी, भले उस वक़्त मैंने उसे सिर्फ एक नजर देखा हो। क़द नाटा, रंग जैसे कालिख और आँखें जैसे जहर की कटोरी—

यही बयान था और उस पर मुसम्मात रजवन्तिया जौजे सीतल धोबी के बाँयें अंगूठे का निशान था।

बड़े दरोगा जी के एक ख़ास गोयन्दे ने ले जाकर रजवन्तिया का यह बयान शम्भू को दिखलाया। शम्भू का उस बयान को देखना था कि उसके तो हाथ के तोते उड़ गये। ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की साँस नीचे। आँख के आगे तारे टूटने लगे। यह हुआ क्या? इस बयान का मतलब क्या है? मैं कहाँ से आ गया इस झगड़े में? मैं तुमसे कहता न था कि कभी पुलिसवालों के मुँह न लगे—साँप के काटे को लहर आती है, पुलिस के काटे को लहर भी नहीं आती!

उस वक़्त उसको बिलकुल ऐसा मालूम हो रहा था जैसे उसके पैर के नीचे की जमीन यक़बयक खिसक गयी हो और वह एक अन्धे ग़ार में पैर दिये खड़ा हो।

उसे कुछ याद नहीं कि दरोगा जी के उस आदमी से उसने क्या कहा क्योंकि उस वक़्त उसे किसी बात का होश न था। हो सकता है उसने कुछ तैश में आकर, कुछ रोकर-गिड़गिड़ाकर अपने बेगुनाह होने की बात कही हो—यही कि मेरा इस वारदात से क़तई कोई ताल्लुक नहीं है और मुझको पुलिस खामखाह इस मामले में लपेट रही है वगैरह-वगैरह......

मगर उससे क्या। कौन मुजरिम है जो आसानी से अपना जुर्म इकबाल कर लेता है? पहले तो सभी ऐसे ही भोले-भाले मेमने बने रहते हैं, वह तो कानून है, अदालत है जो दूध का दूध और पानी का पानी कर देती है।

पुलिस कानिस्टिबिल के हाथ में मुसम्मात रजवन्तिया का बयान था और वह उन बाबू साहब को खौलते तेल की कड़ाही में ज़िन्दा ही डाल दी गयी मछली की तरह तड़फड़ाते और दीवारों से टकराते देख सकता था, बइत्मीनान, माथे पर बग़ैर एक शिकन लाये। शम्भू बाबू बहुत उछले-कूदे, रोये-गायें, थोड़ा-बहुत गरजे-बमके भी मगर कानिस्टिबिल अपनी जगह पर पहाड़ की तरह अटल खड़ा रहा और रजवन्तिया के बयान को तलवार की तरह उसकी गर्दन पर सौंतता रहा। और फिर चला गया।

चला गया और अपने साथ शम्भू के हृदय की शांति, उसकी आँखों की नींद, सभी कुछ लेता गया।

उसके तीसरे रोज मुजरिम ने हथियार डाल दिये, कानून के पहरेदारों की जीत हुई। मुजरिम ने कहीं से लाकर पाँच सौ रुपया जुर्माना भर दिया, मुहासरा उठा लिया गया। वारदात की रपट आग की नजर कर दी गयी, उधर रमलू और इधर शम्भू के रुपयों से बहुतों का बहुत भला हुआ, रजवन्तिया भी आठ-दस रोज में अस्पताल से अपने घर लौट आयी—गरज यह कि न्याय की देवी ने अशोक के धर्म-चक्र की छाया में 'सत्यमेव जयते'[1] का मन्त्रोच्चार करते हुए न्याय भी कर दिया और किसी का एक रोआँ भी नहीं दुखा, उल्टे सबके यहाँ खुशियाँ मनायी गयीं—

---

[1]सत्य की ही जीत होती है

दरोगा जी ने दीवान जी से कहा—चलिए जान बची, वर्ना पलस्तर ढीला हो जाता दौड़ते-दौड़ते—पुलिस को आखिर अपना केस तो बनाना ही पड़ता, क्यों दीवान जी गलत कहता हूँ ?

सीतल ने अपनी जोरू रजवन्तिया से कहा—बड़ी भागवाली थी तू जो जान बच गयी तेरी, नहीं मरने में कोई कसर थोड़े ही थी।

शम्भू ने अपने मन में कहा—चलो, सस्ते छूटे, जो इतने से जान बच गयी वर्ना पुलिस के काटे का मंतर कहाँ ?

और रमलू ने मूँछ पर ताव देते हुए मुसकराकर अपने किसी गुण्डे दोस्त से कहा—अरे यार, जान बचने की तूने भली चलायी ! चाँद के जूते को तूने ऐसा-वैसा समझ रखा है ? आज तो वो जमाना है प्यारे, कि बस अगर तेरी थैली तैयार है तो तेरे जो जी में आवे दिन-दहाड़े कर, कोई साला बोल नहीं सकता—

शाम की थकन

मेज......कुर्सी...गोंद......आलपीन......फाइलें......बादामी और खाकी और हरी और भूरी......

और खत जिनमें कोई लज़्ज़त नहीं, जिन्हें पाने की न कोई लालसा न खोलने का कोई उछाह...मनहूस खत जो आते सिर्फ इसलिए हैं कि उन्हें किसी मेज पर से ठेल कर हिफ़ाजत के साथ किसी फाइल के कठघरे में बन्द कर दिया जाय, जिन्हें पढ़कर कोई खुशी नहीं होती, सिवाय इसके कि दिमाग में रुपये आने पाई के घोड़े दौड़ने लग जायं, जो घोड़े भी अपने नहीं किसी और के हैं।

और इन सबके बाद तरह-तरह के मिलने जुलने वाले जो मिलने की इच्छा से नहीं, दूसरे किसी मतलब से आते हैं मगर अपने मतलब की बात को लच्छेदार नजाकतों के मखमली खोल में छिपाये रहते हैं।

टाइपराइटर टपटपा रहा है। लोग तेजी से इधर से उधर गुजर रहे हैं या मेज पर बैठे ऊंघ रहे हैं। पास के हाल से मशीनों के घड़घड़ाने की आवाज आ रही है। जी हां, हमारे यहां झूठ की चादर बुनी जाती है। चाहिये आपको ?

अभी लोग अपनी-अपनी मेजों पर ठीक से जम भी नहीं पाये हैं कि एक बजे का इन्तजार होने लगा जब कि लंच की छुट्टी होगी। और एक बजा नहीं कि लोग चायखानों और पानवालों की तरफ दौड़ पड़े। चायखानों में बैठकर सब एक दूसरे को एक से एक चंडूखाने का खबरें सुनाते हैं, झूठ और सच के एक नायाब शर्बते रूहअफ़ज़ा का जाम पेश करते हैं और उसी शराब के नशे में आकर फिर अपनी मेज़ों पर बैठ जाते हैं, और फिर वही मेज...कुर्सी...गोंद...आलपीन... और रंग-बिरंगी बदरंगी फाइलें...

और इसी तरह शाम हो जाती है जब कि सब थककर चूर होते हैं; कोई काम की ज़्यादती से और कोई बिलकुल काम न होने से और सभी ऐसे काम में लगे होने की वजह से जिसमें उनका दिल नहीं लगता, जिसमें हाथ पैर दिल दिमाग सब निरे अभ्यास से काम की खानापूरी करते चलते हैं।

यह भीड़ देखिये जयशंकर सूती मिल के मजदूरों की है जो मिल के फाटक से निकल रही है। यह भीड़ देखिये राधाविलास प्रेस से निकल रही है। यह देखिये फलां दफ्तर के बाबू हैं, सबके सब, जिनकी उम्र बीस से लेकर पचास साल तक है। मगर इनमें बीस साल का बाबू भी उतना ही थका हुआ और जिन्दगी से उतना ही बेज़ार है जितना पचास साल का बाबू। फर्क अगर है तो सिर्फ दो एक डिग्री का और वह इसलिए कि बीस वाइस के बाबू के एक बच्चा है और पचास के बाबू के ग्यारह बच्चे हैं जिनमें से मुबलिग सात अदद लड़कियां हैं, जिन सबकी शादी करनी होगी...लिहाजा कोई ताज्जुब नहीं कि एक

थोड़ा मुसकुरा भी लेता है और दूसरा मुँह लटकाये, कान पूँछ दबाये, एकदम खामोश, सर खुजलाता हुआ, कनपटी पर के सफेद बालों पर हाथ फेरता हुआ, किसी निरीह जानवर की तरह अपनी राह चला जाता है, बेहद थका हुआ और बेहद मजबूर क्योंकि वह एक कठघरे से दूसरे कठघरे में जा रहा है। ऐन खुशनसीब होते हैं वो जिन्हें घर पहुँच कर दो घड़ी को चैन मिल जाता है, जो छन भर अपने बच्चों से खेल लेते हैं या जिन्हें इस बात की सुध रह जाती है कि ध्यान दें कि उनकी पत्नी ने साफ धोती पहन रक्खी है या हल्दी के एक हजार दागों वाली धोती पहन रक्खी है। अकसर और बेशतर तो उनकी मुसीबतों का दफ्तर उनके साथ साथ चलता है। आफिस में अगर बड़े बाबू की घुड़की का डर है तो घर पर बीबी के फूलने-गूलने का या मकान मालिक के कारिन्दे का या दूधवाले का या परचूनी का या लाला डाकूमल का जिनसे लड़की की शादी के लिए उन्होंने पाँच सौ रुपये कर्ज़ लिये थे—ऐसे में भला किसे रागरंग सूझता है, किसके हवास दुरुस्त रहते हैं। वहाँ तो किस्सा सिर्फ शाम की थकन का नहीं है, वहाँ तो शाम भी थकन है और सुबह भी और बारह बजे रात भी जब शायद इसी थकन के कारण नींद नहीं आती या आई नींद उचट जाती है, जबकि जिस्म भी थककर चूर होता है और रूह भी थककर चूर होती है। वह थका हुआ सोता है और थका हुआ उठता है, थका हुआ दाढ़ी बनाता है और थका हुआ खाना खाता है, थका हुआ दफ्तर जाता है और थका हुआ बड़े बाबू की डांट खाता है—और थका हुआ शाम को घर लौटता है जब वह मुर्दे की तरह बिस्तर पर ढेर हो जाता है, जब वह किसी को अपने पास नहीं देखना चाहता, किसी को नहीं, एक शख्स को नहीं, किसी बच्चे ने जरा शोर किया नहीं कि उसे घप्प पड़ा, बीबी ने किसी चीज़ के लिये उछलकूद मचाई नहीं कि पड़ी एक करारी डांट कि सब उछल-कूद गायब जैसे सांप सूँघ जाय।

टाइपराइटर टपटपा रहा है। लोग तेजी से इधर से उधर गुजर रहे हैं या मेज पर बैठे ऊंघ रहे हैं। पास के हाल से मशीनों के घड़घड़ाने की आवाज आ रही है। जी हां, हमारे यहां झूठ की चादर बुनी जाती है। चाहिये आपको ?

अभी लोग अपनी-अपनी मेजों पर ठीक से जम भी नहीं पाये हैं कि एक बजे का इन्तजार होने लगा जब कि लंच की छुट्टी होगी। और एक बजा नहीं कि लोग चायखानों और पानवालों की तरफ दौड़ पड़े। चायखानों में बैठकर सब एक दूसरे को एक से एक चंडूखाने का खबरें सुनाते हैं, झूठ और सच के एक नायाब शर्बते रूहअफ्ज़ा का जाम पेश करते हैं और उसी शराब के नशे में आकर फिर अपनी मेज़ों पर बैठ जाते हैं, और फिर वही मेज...कुर्सी...गोंद...आलपीन... और रंग-बिरंगी बदरंगी फाइलें...

और इसी तरह शाम हो जाती है जब कि सब थककर चूर होते हैं; कोई काम की ज़्यादती से और कोई बिलकुल काम न होने से और सभी ऐसे काम में लगे होने की वजह से जिसमें उनका दिल नहीं लगता, जिसमें हाथ पैर दिल दिमाग सब निरे अभ्यास से काम की खानापूरी करते चलते हैं।

यह भीड़ देखिये जयशंकर सूती मिल के मजदूरों की है जो मिल के फाटक से निकल रही है। यह भीड़ देखिये राधाविलास प्रेस से निकल रही है। यह देखिये फलां दफ्तर के बाबू हैं, सबके सब, जिनकी उम्र बीस से लेकर पचास साल तक है। मगर इनमें बीस साल का बाबू भी उतना ही थका हुआ और जिन्दगी से उतना ही बेज़ार है जितना पचास साल का बाबू। फर्क अगर है तो सिर्फ दो एक डिग्री का और वह इसलिए कि बीस बाइस के बाबू के एक बच्चा है और पचास के बाबू के ग्यारह बच्चे हैं जिनमें से मुबलिग सात अदद लड़कियां हैं, जिन सबकी शादी करनी होगी...लिहाजा कोई ताज्जुब नहीं कि एक

थोड़ा मुसकुरा भी लेता है और दूसरा मुँह लटकाये, कान पूँछ दबाये, एकदम खामोश, सर खुजलाता हुआ, कनपटी पर के सफेद बालों पर हाथ फेरता हुआ, किसी निरीह जानवर की तरह अपनी राह चला जाता है, बेहद थका हुआ और बेहद मजबूर क्योंकि वह एक कठघरे से दूसरे कठघरे में जा रहा है। ऐन खुशनसीब होते हैं वो जिन्हें घर पहुँच कर दो घड़ी को चैन मिल जाता है, जो छन भर अपने बच्चों से खेल लेते हैं या जिन्हें इस बात की सुध रह जाती है कि ध्यान दें कि उनकी पत्नी ने साफ धोती पहन रक्खी है या हल्दी के एक हजार दागों वाली धोती पहन रक्खी है। अकसर और बेशतर तो उनकी मुसीबतों का दफ्तर उनके साथ साथ चलता है। आफिस में अगर बड़े बाबू की घुड़की का डर है तो घर पर बीबी के फूलने-गूलने का या मकान मालिक के कारिन्दे का या दूधवाले का या परचूनी का या लाला डाकूमल का जिनसे लड़की की शादी के लिए उन्होंने पाँच सौ रुपये कर्ज़ लिये थे—ऐसे में भला किसे रागरंग सूझता है, किसके हवास दुरुस्त रहते हैं। वहाँ तो किस्सा सिर्फ शाम की थकन का नहीं है, वहाँ तो शाम भी थकन है और सुबह भी और बारह बजे रात भी जब शायद इसी थकन के कारण नींद नहीं आती या आई नींद उचट जाती है, जबकि जिस्म भी थककर चूर होता है और रूह भी थककर चूर होती है। वह थका हुआ सोता है और थका हुआ उठता है, थका हुआ दाढ़ी बनाता है और थका हुआ खाना खाता है, थका हुआ दफ्तर जाता है और थका हुआ बड़े बाबू की डांट खाता है—और थका हुआ शाम को घर लौटता है जब वह मुर्दे की तरह बिस्तर पर ढेर हो जाता है, जब वह किसी को अपने पास नहीं देखना चाहता, किसी को नहीं, एक शख़्स को नहीं, किसी बच्चे ने जरा शोर किया नहीं कि उसे धप्प पड़ा, बीबी ने किसी चीज़ के लिये उछलकूद मचाई नहीं कि पड़ी एक करारी डांट कि सब उछल-कूद गायब जैसे सांप सूँघ जाय।

यह है असल शाम की थकन जो दिल को, दिमाग को, आत्मा को, शरीर को, सबको जैसे चूस कर फेंक देती है, एकदम निःसत्त्व, एकदम खोखला करके। यह थकन उस गुलाबी थकन से बिलकुल अलग चीज है जो दिन भर की ऊधम या दिन भर के आलस्य के बाद कुछेक राज-कुमारों को हो जाया करती है। उस गुलाबी थकन को सुर्ख शराब के प्याले में डुबोया जाता है...जरा सी ह्विस्की गले के नीचे उतरी नहीं कि सारी थकन उड़ंछू और मन का पपीहा फिर गाने लगा, मन का मोर फिर नाचने लगा, मन का हिरन फिर कुलांच भरने लगा, मन का मधुबन फिर सुलग उठा, मधुरात फिर जगमगा उठी। यहाँ तो उसका भी सिलसिला नहीं...बहुत हुआ तो कभी चोरी-चोरी थोड़ा सा ठर्रा चढ़ा लिया और फिर उसका अन्त या तो हवालात में होता है या सड़क किनारे की नाली में या घर के महायुद्ध में। गाली गुफ्ता मारपीट धौल धप्पा।

जनाब हार्लिक्स हैं, तो वह भी सुबह की थकान को ही दूर करने का दावा करते हैं, शाम की थकन के बारे में वो भी चुप हैं।

शाम की थकन सिनेमा के हाल में, बंबइया एन्टर्टेनर्स के सहारे, रसीले गीतों की नैया पर चढ़ कर चित्रपट की रोमानी दुनिया के मलय झकोरों से दूर की जाती है। वह देखिये एक मील लम्बा 'क्यू' जिसमें इक्केवाला, रिक्शेवाला, आफ़िस का बाबू, कालेज का विद्यार्थी सब आपस में गाँठ जोड़े इस नई मधुशाला के पियक्कड़ों की तरह, बेताबी की तसवीर बने खड़े हैं। इनमें से किसी के घर में भूँजी भाँग नहीं है, कोई अपनी पढ़ाई बेचकर इस वासना के इन्द्रजाल को मोल ले रहा है कोई अपने बच्चों की पढ़ाई बेचकर और कोई अपनी स्त्री के बदन पर की धोती बेचकर...इन्हें कुछ न कहो, ये सब शाम की थकन दूर कर रहे हैं मगर कौन जाने यह थकन दूर होगी भी कि नहीं? खुदा जाने, इस शाम की थकन को कब नींद आयेगी? किस रोज हमें सचमुच

प्रसन्न, हँसते हुए चेहरे देखने को मिलेंगे जिन पर थकन और खस्रासत की यह मुहर न होगी ? किस रोज परीशानियों से जिन्दगी शल न होगी ? किस रोज थकन का यह सरूर रगों में दौड़ना बन्द करेगा ? किस रोज इनसान की मेहनत गुलाब की तरह खिल उठेगी ? मरघट का पीपल तरु किस दिन चरमरा कर गिरेगा ? दफ्तर का किरानी किस दिन हँसता हुआ और सीटी बजाता हुआ और गाता हुआ घर लौटेगा ?

घबरा मत मेरे दोस्त, वह दिन भी आ रहा है। इनसान की तरक्की की मंजिल वही है, और उसी मंजिल की तरफ यह कारवाँ बराबर बढ़ रहा है, रास्ते के नागफनों को पैरों से रौंदता हुआ। कोशिशें जारी हैं कि तू इसी तरह थका हुआ, कुम्हलाया हुआ, मुर्दा बना रहे, तेरे बाल यूं ही धूल में अटे रहें, तेरे ओठों पर यूँ ही परीशानियों की बर्रे अपने छत्ते लगाये रहें, तेरे दिल में यूं ही निराशा की कुंठा का घटाटोप अंधेरा छाया रहे, तेरी आँखों के आगे यूं ही मुसीबतों के अगम पहाड़ खड़े रहें, तेरे हाथों में यूं ही मजबूरियों की हथकड़ियाँ पड़ी रहें, तेरे पैरों को रेगिस्तान यूँ ही बाँधे रक्खे...

...मगर अब और नहीं, अब इनके तंबू खेमे उखड़ चले, अब इंसानियत अज़्-सरे-नौ संवर चली, क़ाफ़िले की निगाह अब कहीं दूर पर अटकी हुई है और वह मरीचिका नहीं है क्योंकि वहाँ से नये इंसान की मादक गंध आ रही है। हमारा पहला काफिला नहीं है जो उस मंज़िल पर पहुँचना चाहता है। दूसरे काफिले भी उस पर पहुँचे हैं और वहाँ पर अब उनकी बस्तियाँ बसी हुई हैं जहां उनके घरों से गर्म-गर्म आजाद रोटी की सोंधी-सोंधी महक आ रही है, जहाँ शाम के वक्त दिन भर की आजाद और ईमानदार मेहनत से लौटे हुए लोग हँस रहे हैं, गा रहे हैं, नाच रहे हैं, टोलियाँ बनाये गपशप कर रहे हैं, दिलों के सौदे कर रहे हैं, बच्चे पातीडीलो खेल रहे हैं, बच्चियाँ घरौंदे बना रही हैं, स्त्रियाँ अपने घरवालों और पड़ोसियों को दूध और शिकंजवीन के गिलास दे

रही हैं, आ रही हैं और जा रही हैं और फिजा में रंगो-बू भर रही हैं... सबके तन पर कपड़े हैं, सबके पेट में अन्न है, सब के दिल में रोशनी है, कहीं शाम की थकन नहीं है, किसी के चेहरे पर उसका एक धब्बा नहीं है क्योंकि सबने दिन भर अपने ही लिए अपने बच्चों ही के लिए मेहनत की है, क्योंकि वह मेहनत गुलामी की मेहनत नहीं थी और क्योंकि दिन भर की मशक्कत के बाद शाम आराम का, अलमस्त बेफिक्री का पैगाम लेकर आई है। शाम को नाच और रंग होगा, रात को नींद की परियाँ उसी सुबुक अंदाज में मौसम की मार खाये हुए लोगों की पलकों पर आकर बैठेंगी, जिस अंदाज में वह भोले बच्चों की पलकों पर बैठती आई हैं। शर्बती नींद में भी उनका नई जिन्दगी का नाच जारी रहेगा और फिर सुबह हो जायगी जब खेतों में जाना है, खानों में जाना है, कारखानों में जाना है, दफ्तर में जाना है, कालेज में जाना है, प्रयोगशाला में जाना हैं जो सब अपने हैं, खुद अपनी मेहनत के उगाये हुए चाँद और सूरज हैं, जहाँ कहीं भी थकन पहरेदार नहीं है, जहाँ थकन को देश निकाला मिल चुका है, शाम की थकन को और रात की थकन को और सुबह की थकन को; मर्द की थकन को और औरत की थकन को और बच्चे की थकन को; आज की थकन को और कल की थकन को और परसों की थकन को...दुनिया अब बहुत थक चुकी, अब उसे अपनी रगों में एक नई हरारत की चाह है।

सपने और सपने

देबू के पिता, देबू की माँ और देबू की बहन शशिकला, तीनों बाहरवाले कमरे में बैठे थे। शाम का वक्त था, बाहर झमाझम पानी गिर रहा था। ऐसा कम ही हो पाता था कि घर के सब लोग थोड़ी देर को एक साथ बैठ सकते हों। नियति का चक्र, जीवन का शाप, जो चाहे कह लीजिए, मगर बात कुछ ऐसी ही थी। और इस वक्त भी देखिए न, सब हैं, मगर देबू नहीं है। होगा, कहीं होगा। भटक रहा होगा। उसको इसी में मज़ा आता है। ऐसे कीचड़-काँदो में आदमी पैर बटोर कर घर में बैठता है, मगर देबू है कि दरदर की ख़ाक छानता फिरता है। अब किसी को घर काटता हो तो इसका क्या इलाज है।

बहरहाल ये बाक़ी तीनों इस वक्त इकट्ठा बैठे थे क्योंकि आज आकाशवाणी होनी थी।

ठीक सात बजा और आकाशवाणी होने लगी, मगर आकाश से नहीं, लकड़ी के उस छोटे से बक्स में से जो सामने मेज़ पर रक्खा हुआ था।

आज हमारा एक नया सपना सच हो रहा है। एक नये हिन्दुस्तान का जन्म हो रहा है। इस नये हिन्दुस्तान में एक भी आदमी नंगा नहीं रहेगा, एक भी आदमी भूख से नहीं मरेगा। हिन्दुस्तान खुशहाल होगा। हिन्दुस्तान में घी-दूध की नदियाँ बहेंगी। हम सुनहरे क्षितिजों की ओर बढ़ रहे हैं—मगर धीरे-धीरे, सँभल-सँभल कर बढ़ रहे हैं, क्योंकि हम हिंसा और रक्तपात के रास्ते से नहीं, प्रेम और अहिंसा और सर्वोदय के रास्ते से वहाँ पर पहुँचना चाहते हैं। कुछ दक़ियानूसी लोग हिंसा और रक्तपात को ही क्रांति समझ बैठे हैं, मगर हम तो एक नयी ही क्रांति का सूत्रपात कर रहे हैं। हम अभी अमीर-ग़रीब, मालिक-नौकर, ब्राह्मण-चाण्डाल, सबको साथ लेकर उन सुनहरे क्षितिजों पर पहुँचना चाहते हैं। उसमें वक्त लगता है। कारवाँ जितना ही बड़ा होता है, उसकी रफ्तार उतनी ही धीमी होती है। इसमें ऐसी अजीब बात क्या है कि इन सात वर्षों में अभी हम कुछ नहीं कर पाये हैं? क़ौम की ज़िन्दगी में सात तो क्या सत्तर बरस भी कुछ नहीं होते! और फिर हमारे हिन्दुस्तान के पास क्या नहीं है? हमारे हिन्दुस्तान के पास सब कुछ है। हमारे हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी दौलत उसकी नदियाँ हैं। हमारी नदी-योजनाओं को पूरा तो होने दीजिए, फिर देखिएगा कैसे यह हिन्दुस्तान एक हरा-भरा चमन बन जाता है। मैं उसी दिन का सपना देख रहा हूँ। घबराइए नहीं। धीरज रखिए। हमारी तमाम तकलीफ़ों का अन्त अब पास है। हम अब नये युग में दाखिल हो रहे हैं जो रोशनी का युग है, बिजली का युग है। हम इन नदियों के पानी को कैद करेंगे, उनपर इतने बड़े-

बड़े बाँध बनायेंगे कि दुनिया अश्-अश् करेगी और फिर उसी पानी से बिजली पैदा करेंगे और फिर हमारे देहात जो अभी सरेशाम अँधेरे और मरघट के सन्नाटे में डूब जाते हैं, उनकी मुर्दा रगों में बिजली दौड़ने लगेगी, उनमें जान पड़ जायगी...

—मगर तब तक आदमी तो रहे-सहे भी मर चुके होंगे... बाहर बरामदे में से ही कहता हुआ देबू कमरे में दाखिल हुआ। कपड़े बुरी तरह लथपथ हो रहे थे।

माँ ने देखते ही कहा—जाओ-जाओ, पहले कपड़े बदलो...

देबू अपने कमरे में जाने के लिए दूसरे दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा, मगर दरवाज़े पर पहुँच कर रुक गया और बोला—तुम लोगों का जी भी नहीं ऊबता? रास्ते भर सुनता आ रहा हूँ, हर पानवाले और हर चाय-वाले के यहाँ यही नानी की कहानी चली जा रही है! घर आता हूँ तो यहाँ भी वही—तुम लोगों का जी भी नहीं ऊबता? मेरे बदन में तो आग लग जाती है। कहाँ तक सुने कोई, रोज़-रोज़ वही बात—और बस बात...बात...बात...

ये आखिरी शब्द तो उसने अपने स्वर में इतनी हिंसा भरकर कहे कि लगा कि और कुछ नहीं तो वह रेडियो को तो तोड़ ही डालेगा। मगर देबू ने ऐसी कोई हरकत नहीं की और अपने कमरे में चला गया।

देबू की माँ को आज थोड़ा आश्चर्य हो रहा था क्योंकि देबू इतना बड़ा होते हुए भी कभी अपने बाप के सामने ऐसे बोलता नहीं था। ज़रूर उसकी तबीयत कुछ खराब है।

ठीक यही बात देबू के पिता नेकही—मालूम होता है कि देबू की तबीयत खराब हो रही है।

माँ ने बेटे का पक्ष लेते हुए कहा—क्यों, उसके बोलने पर से कह रहे हो ? ठीक तो कहता है। खाने का ठिकाना नहीं, किसके समाई है इतनी कि बस सपना ही देखा करे दिन-रात ! मेरी एक बुढ़िया दादी थीं, उनका भी यही हाल था। पता नहीं यह कौन-सी बीमारी उन्हें लग गयी थी, मगर थीं वह भी ऐसी ही। दिन-रात यही अलाय-बलाय बका करती थीं, आँखें खुली रहती थीं और सपना देखती रहती थीं। पता नहीं उनकी आँखों के आगे हर वक्त कैसी-कैसी परियाँ नाचा करती थीं। बहुत बुड्ढी हो गयी थीं और वह तो मरीं भी वैसे ही। बैठे-बैठे हार्टफेल हो गया था। मगर जिस तरह दीवार से टिकी हुई वह मचिया पर बैठी थीं और आँखें बाक़ायदा खुली हुई थीं उनको देखकर कोई कह थोड़े ही सकता था...

देबू के पिता ने बात काटते हुए कहा—तुम भी अजीब आदमी हो देबू की अम्माँ, कहाँ की बात कहाँ घसीट ले गयीं !

देबू की अम्माँ ने कहा—कुछ झूठ कहती हूँ ? यह बात रोग भी तो एक रोग है, जो वैद्य लोग बताते हैं...

देबू के पिता ने झल्लाकर कहा—देबू की अम्माँ, तुम न कुछ जानो न समझो...वैद्य लोग जो वातरोग बतलाते हैं वह दूसरी चीज़ है।

देबू की अम्माँ ने किसी तरह हार न मानते हुए कहा—अरे वह दूसरी चीज़ नहीं, तीसरी चीज़ हो, मगर है वही।

बात शुरू तो देबू को लेकर हुई मगर देबू तो अलग ही छूट गया, पति-पत्नी में खामखाह यह एक और ही तकरार होने लगी।

देबू की अम्माँ का जी अभी नहीं भरा था, पति को दुबारा छेड़ती हुई बोलीं—निरी बातें लेकर क्या करे कोई ? शहद लगाकर चाटे ?

देबू के पिता एक अंग्रेजी फ़र्म मैकफ़र्सन ऐंड कम्पनी में हेड क्लर्क थे और उनको जो चीज अच्छी लगती थी, अच्छी लगती थी, बुरी लगती थी, बुरी लगती थी—किसी से बहस करना उनके स्वभाव में न था।

बोले—देबू की अम्माँ, तुमसे बात करना फ़िजूल है। पानी रुक गया है। मैं चौधरी साहब के यहाँ जाता हूँ।

देबू के परिचय के सिलसिले में कहने की बातें बस दो हैं। एक तो यह कि उसने पिछले साल इतिहास में एम० ए० किया था और दूसरी यह कि वह बेकार है। सुबह से लेकर शाम तक सभी अखबारों के वांटेड वाले कालम का पारायण करता है और हर जगह अर्जी भेजता है और जहाँ भी किसी जगह की बात सुन पाता है, दौड़ जाता है। मगर अब तक तो किसी चीज का कोई नतीजा नहीं निकला है। देबू की दिली ख़्वाहिश है कि अब वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाय और अपने अधेड़ बाप के सर का बोझ न बने। मगर वह क्या करे, उसके हाथ में क्या है। वह तो डूबते हुए आदमी की तरह फटाफट-फटाफट सभी तरफ़ हाथ-पैर मार रहा है मगर तब भी इस नये हिन्दुस्तान में देबू के लिए कहीं कोई जगह नहीं है—इस हिन्दुस्तान में जिसका नया जन्म हो रहा है, जिसे अपने इतिहास को, अपनी संस्कृति को नयी आँखों से देखना है, समझना है, अपनी सनातन आत्मा को पहचानना है......

देबू अक्सर हैरान होकर सोचता है कि यह कैसी अजीब दुनिया है जिसमें मैं जी रहा हूँ, एक अजीब पागलखाना, जिसमें सब एक से एक अच्छे बाजीगर हैं, जहाँ सब सितारे नोच लाने की बातें किया करते हैं मगर होता-जाता कुछ नहीं! कैसी अजीब बात है कि एक कौम जो सैकड़ों साल की गुलामी के बाद अपने पैरों पर खड़ी हो रही है, उसे मेरे इतिहास-ज्ञान की जरूरत नहीं है, नईम के साहित्य प्रेम की जरूरत

नहीं है, परितोष सेन की चित्रकला की जरूरत नहीं है, अनिल बैनर्जी के प्राणिशास्त्र की जरूरत नहीं है, राजेश सक्सेना के रसायनशास्त्र की ज़रूरत नहीं है, हनुमंतैया के पदार्थ ज्ञान की ज़रूरत नहीं है! उसे ज़रूरत सिर्फ़ ओवरसियरों की है! और लुत्फ़ यह कि बेचारे ओवरसियर भी आजकल टके सेर बिक रहे हैं!

शशिकला देबू के कमरे में आयी तो उसने देखा कि भैया सिर पर हाथ रखे आँख मूँदे आराम कुर्सी में लेटे हैं। शशि जैसे आयी थी वैसे ही लौट गयी और माँ को जाकर बतलाया।

माँ ने कमरे में दाखिल होते हुए कहा—बेटा तू नौकरी के पीछे जान दे देगा क्या! न तुझे खाने की सुध न पीने की। यह भी कोई बात है। नहीं मिलती नौकरी न सही, कौन तुझे खाने के लाले हैं...

देबू ने आंखें खोल दीं मगर कुछ कहा नहीं और वैसे ही पड़ा रहा। माँ ने बड़े प्यार से उसके बालों में हाथ फेरते हुए कहा—बेटा, कोशिश करना ही आदमी के बस में है और कोशिश तो तू पूरी कर रहा है।...शशि बेटी, जाओ भैया के लिये चाय तो ले आओ, और देखो खाने के लिए डोली में से पकौड़ियां लेती आना...

माँ हमेशा ऐसी ही बातें करती हैं और ऐसी ही बातों से देबू का मन और भी कातर हो जाता है। उसका जी न जाने कैसा मसोस-सा उठता है। वह जानता है कि दो सौ रुपया कल्पवृक्ष नहीं होता और फिर उस पर से पिता का तेजी से चढ़ा चला आ रहा बुढ़ापा, और शशि, जो अभी हाई स्कूल में पढ़ रही है और साल दो साल में जिसका ब्याह करना होगा। वह जानता है कि घर की हालत कुछ खास अच्छी नहीं है और माँ सिर्फ दिलजोई के लिए ये बातें कर रही हैं। इसीलिये यह चीज उसे और भी खलती है। बोला—नहीं माँ, कुछ तो नहीं। यों

ही थोड़ी-बहुत कोशिश कर लेता हूँ। बिना कोशिश-पैरवी के कुछ होता भी तो नहीं।

यों होने को तो कोशिश-पैरवी से भी कुछ नहीं होता। कौन-सी कोशिश-पैरवी है जो देबू ने नहीं की।

और उसे हँसी आ जाती है और रोना आ जाता है, उन सब उतार-चढ़ावों को देखकर जो उसके खयालों में इधर बरस दो बरस में आये हैं...हँसी यह कि देखो कैसे सातवें आसमान पर था मेरा दिमाग और रोना यह कि वाह, क्या खूब औंधे मुँह गिरा हूँ नाली में।

इसी उद्विग्न और उद्भ्रान्त मनःस्थिति में देबू अपनी मेज़ की दराज़ के कुछ पुराने कागजात उलट-पलट रहा था। तभी अचानक उसे अपनी दो बरस पुरानी एक डायरी मिल गयी। योंही कुतूहलवश उसने उसको उठा लिया और उसके पन्ने पलटने लगा। एक पन्ने पर पहुँचकर वह रुक गया और पढ़ने लगा।

'...बड़ा ऊट-पटांग इतिहास पढ़ाते आये हैं ये सब! और कैसे अजीब हैं हमारे देश के नेता लोग जिन्होंने आजादी के बाद भी उस गोराशाही इतिहास में कुछ भी रद्दो-बदल करने की जरूरत नहीं समझी। आज भी वही पुराना इतिहास पढ़ाया जा रहा है। उन्हें तो जैसे हमारे इतिहास से, हमारी परम्पराओं से प्यार नहीं था, हो भी नहीं सकता था। वे हमसे प्यार करने तो आये नहीं थे, वे तो हमारे ऊपर राज करने आये थे। तब भला उन्हें यह कैसे मंजूर होता कि उनके गुलामों के पास अपना इतिहास हो, अपनी उन्नत संस्कृति हो, अपने देश का गौरव हो, अपने इतिहास और अपनी संस्कृति का गौरव हो?

ऐसा गुलाम बहुत रोज गुलाम नहीं रहता। इसीलिए तो वे अपने गुलाम को ऐसा कर देना चाहते थे कि उसे अपने चारों तरफ़ बस एक भांय-भांय करता हुआ सूना रेगिस्तान दिखायी दे और उसका दिल खुद एक रेगिस्तान हो, सूना, बंजर, हताश। इसीलिए तो ये हरामज़ादे गोरे हमारे इतिहास को इस तरह तोड़-मरोड़ कर पेश करते हैं। मगर अब? अब तो बात बदल गयी है। हमें नये सिरे से अपने आजाद राष्ट्र का निर्माण करना है। राष्ट्र के निर्माण में इतिहास का बड़ा योग होता है। हमें सारा इतिहास नये सिरे से लिखना होगा। बड़ा भारी काम है। इतिहास की सारी श्रृंखलाएँ ठीक करनी हैं। अपनी नयी पीढ़ी को हमें इस झूठे इतिहास के जहर से बचाना होगा—अंग्रेज़ी सल्तनत ने हिन्दुस्तान को विज्ञान दिया, सभ्यता दी, वर्ना हम लोग जंगली ही रह जाते! क्लाइव बहुत बड़ा योद्धा था, कैनिंग बड़ा नेकदिल था, हैदर लुटेरा था, तात्या टोपे डाकू था! अंग्रेज न आये होते तो हिन्दू मुसलमान को खा गया होता, और मुसलमान हिन्दू को खा गया होता! एक-दो बातें हैं! न जाने कितनी गंदगी है, जिसकी सफ़ाई हमें करनी होगी। शोध का काम करने वालों की सैकड़ों टोलियाँ होंगी जो सब अपना अपना काम बांट लेंगी और फिर बरसों तक सिर झुकाये अपना काम करेंगी, तमाम पुराने काग़ज़ात उलटने-पलटने होंगे, किताबें देखनी होंगी, दो पंक्तियों के बीच में लिखी हुई अनलिखी पंक्तियां पढ़नी होंगी—और फिर न जाने कितना घूमना होगा, प्रांत-प्रांत, नगर-नगर, गाँव-गाँव, रेलगाड़ी पर और बैलगाड़ी पर और पैदल, और पैठना होगा जनता के स्मृति-कोष में। लोक कथाओं और लोक गीतों के रूप में न जाने कितना इतिहास हमें बिखरा हुआ मिल जायगा। उन्हीं की एक-एक ईंट जोड़कर हमें अपने इतिहास का महल उठाना होगा। कितना कठिन काम है, मगर कितना जरूरी।...मैं अपनी सारी जिन्दगी इसी काम में लगा दूँगा...'

अपनी दो बरस पुरानी डायरी के इन पन्नों को पढ़ कर देवू 5 मुँह कड़वा हो गया। मैं अपनी सारी जिन्दगी इसी काम में ल1 दूँगा... कोई पूछता भी है आपको कि यों ही छान-पगहा तुड़ा रहे हैं ! जान न पहचान बड़ी बीबी सलाम ! रिसर्च करने चले थे ! फूटी कौड़ी को तो कोई पूछता नहीं। अब इतिहास की नहीं, नाली की सफाई करना सारी जिन्दगी ! बड़े चले थे रिसर्च करने—कोई इस काबिल समझता भी है तुमको ? जो काबिल था वह रिसर्च करने भी लगा (काबिल था तभी तो करने लगा !) और आप निबुआ-नोन चाटते रह गये !

हताशा की जिस सीढ़ी पर आज वह खड़ा था, वह सदा पर न था। उसने बहुत-सी उमंगें, बहुत-सी महत्वाकांक्षाएँ लेकर जीवन-यात्रा शुरू की थी। मगर काल के निर्दय प्रवाह में उमंगें सब एक-एक करके बुझ गयी थीं और महत्वाकांक्षाएँ जलकर राख हो गयी थीं।

इतिहास के शोध का काम करने की ही उमंग सबसे प्रबल थी मगर जब वजीफा उससे कम नम्बर पाने वाले एक विद्यार्थी को केवल इसलिए मिल गया कि वह विभाग के अध्यक्ष का कोई नातेदार था, तो शोध का काम वहीं ठंडा पड़ गया; क्योंकि और कुछ संभव न था।

इसके बाद उसने युनिवर्सिटी में लेक्चरर बनने के स्वप्न देखे, फिर इंटरमीडियट कालेज की अध्यापकी के लिए अपने मन को तैयार किया मगर जब वह सब कुछ भी हाथ न लगा और दिमाग जो सिकहर पर था जूते खाकर जमीन पर आया, तो अब इंटर-कालेज क्या, वह हाई स्कूल और मिडिल-स्कूल की मास्टरी के लिए भी तैयार था।

मास्टरी की तरफ से मायूस होकर उसने क्लर्की के लिए अपने मन को राजी किया। क्लर्की उसे बड़ी जान लेवा चीज़ मालूम होती थी।

क्लर्की आदमी को चूसकर खोखला कर देती है। मगर जब वह उसकी तलाश में निकला, तो उसे मालूम हुआ कि क्लर्की भी कहीं पेड़ में नहीं लगी है कि पेड़ हिलायेगा और पटापट दस-बीस फल चू पड़ेंगे। सत्तर और अस्सी रुपये की एक-एक नौकरी के विज्ञापन पर सैकड़ों अर्जियाँ पड़ती थीं। एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं न जाने कितनी बार देबू ने यह चीज देखी थी। जिस तरह मिठाई के एक टुकड़े पर मक्खियों के गोल के गोल टूटते हैं, उसी तरह किसी एक सड़ी-सी नौकरी पर कोड़ियों डिग्री-धारी लोग टूटते थे। देबू ने यह चीज इतने पास से देखी थी कि अब उसे डर लगने लगा था—

और फिर एक दिन देबू घर नहीं लौटा। कुहराम मच गया।

माँ की आँख से बराबर आँसू जारी थे। हिचकियां बँध गयी थीं। उसने कहने को तो यह कहा कि 'क्या पता-ठिकाना देता बेचारा, कोई हो भी!' मगर उसके दिल का चोर यह था कि देबू जरूर रेल-वेल के नीचे आ रहा! और यह कोई वैसी अनहोनी बात भी तो नहीं, अकसर ही तो ऐसी वारदातें होती रहती हैं। आदमी का दिल टूट जाता है तो वह क्या नहीं कर डालता।

और उस वक्त उस गरीब-बेकस मां ने मन ही मन एक हजार बार उस आदमी को कोसा जो मरघट में बैठकर फूलों के सपने देखा करता है, जिसे अपनी आँखों के आगे दिन-दहाड़े नाचते हुए रक्त-मांस के भूत जीते-जागते कंकाल तो नहीं दिखायी देते, हाँ, दिलकश परियां जरूर दिखायी देती हैं! जिसे अपनी कौम की बरबाद होती हुई जवानी नहीं दिखायी देती, वह भी कोई आदमी है?

माँ का दिल रो रहा था और दर्द से ऐंठा जा रहा था। बाप का दिल भी अपने कुछ खुश्क तरीके से रो रहा था। शशी का नादान दिल अपने प्यारे भाई के लिए फफक-फफक कर रो रहा था।

मगर खैर जब अगले रोज और उसके अगले रोज और उसके भी अगले रोज आस-पास कहीं से वैसी वारदात की खबर नहीं आयी, तो उन लोगों के दिल को थोड़ा-सा करार आया। और फिर वक्त से अच्छा मरहम तो आज तक दूसरा ईजाद हुआ नहीं!

देबू की कमी घर में सबको बहुत खलती थी, मगर धीरे-धीरे सबने अपने मन को समझा लिया था कि देबू जहाँ भी है आराम से है। जहाँ का आन्नदाना लिखा होता है...

दो बरस गुजर गये। शशि ने इंटर पास कर लिया और उसकी शादी भी हो गयी। उसका पति कलकत्ते की एक जूट मिल में काम करता था, कृष्णा जूट मिल में।

बस के कंडक्टर ने शशि की सीट के पीछे से कहा, बहन जी, टिकट...और सिर नीचा किये टिकट काटते हुए सामने आ गया। पिछली सवारी के पैसे गिनकर अपने चमड़े के थैले में रखते हुए, वैसे ही सिर नीचा किये किये बस के कंडक्टर ने शशि की ओर अपना हाथ बढ़ाया और दुबारा बोला—बहन जी, टिकट...

शशि का पति जेब से पैसे निकालते हुए बोला—एसप्लेनेड, दो टिकट...

तभी शशि की नजर बस कंडक्टर पर गयी।

इतिहास का अन्वेषक अब खुद एक इतिहास था, उम्मीदों के ढहे हुए रंग महल का एक मलबा, सपनों की एक टूटी हुई घायल कड़ी, आसमान में यों ही भटकता हुआ एक आवारा बादल...

इति जम्बूद्वीपे भारतखण्डे

आओ कुलभूषण, तुम्हें बनारस घुमाएँ। मगर मेरी बात मान लो, अपने लिए गाइड तुमने ठीक नहीं चुना। मैं ज़रूर बनारस में रहता हूँ, मगर गाइड तुम्हें ऐसा चाहिए जिसमें बनारस रहता हो, जिसकी रगों में बनारस बहता हो, बनारस यानी...

इतने तेज नहीं यार, जरा धीरे-धीरे। तुम तो पहली ही चीज में गड़बड़ा गए, यहाँ मेल ट्रेन नहीं छोड़ सकते तुम। कैसे गावदी आदमी हो, तुम्हें यही नहीं मालूम कि बनारस में आकर गति मर जाती है ? गंगा मैया को ही देख लो—कनखल में वह कितनी तेज बहती हैं कि पानी पैर को काट दे, बनारस पहुँचते-पहुँचते वह इतनी सुस्त पड़ जाती हैं कि पानी पैर को काट देता है। गरज, बनारस में सभी कुछ धीरे चलता है। गंगा जी धीरे चलती हैं, आदमी धीरे चलते हैं। (अगर

आदमी धीरे न चलते होते तो यह क्या माजरा है कि बनारस की तमाम सड़कें बयकवक्त ऐसी खचाखच भरी रहती हैं कि कन्धे-से-कन्धा छिलता है? मुझे तो ऐसा ही लगता है कि बनारस में लोग किसी निश्चित समय पर कहीं पहुँचने के लिए घर से नहीं निकलते, वह घर से निकलते हैं घर से निकलने के लिए, सड़क पर यों ही मटरगश्ती करने के लिए। इसी लिए सड़कों पर यह जो चौबीस घंटा मेला लगा रहता है, उसको देख कर सन्देह होता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि पीतल के डिब्बों-जैसे ये सारे मकान खाली पड़े हों और उनके रहने वाले चिरकाल से यों ही सड़कों पर मेल्हते-इठलाते, पान चबाते, बोलियां-ठोलियां करते घूम रहे हों!) हाँ, तो कुलभूषण साहब, आपका गाइड आपको बतला रहा था कि इस शहर में हर चीज धीरे चलती है, नदी धीरे चलती है, आदमी धीरे चलते हैं, जानवर धीरे चलते हैं—जानवर से मेरा मतलब गायों और सांड़ों से है, मगर खैर, उसकी तो वजह है। काशी विश्वनाथ की नगरी है। सांड़ विश्वनाथ का वाहन है और गाय सांड़ की धर्म-पत्नी है, और विश्वनाथ की पुत्र वधू है, यानी अगर यह मान लें कि सांड़ विश्वनाथ का पुत्र है। (गो कोई भला आदमी कभी अपने पुत्र पर सवारी नहीं करता, मगर खैर एक तो देवताओं की बात ही निराली है, दूसरे श्रवण कुमार दिखला ही गये हैं कि उसमें कोई अनौचित्य नहीं है; पुत्र भी पिता का वाहन हो सकता है।) और यह बात इसलिए भी माननी पड़ेगी कि जो पूजा-सत्कार हमारे यहां नन्दी का होता है, जितनी तुलसी और जितना जल नन्दी को चढ़ाया जाता है उतना विश्वनाथ यानी महादेव और पार्वती के औरस पुत्र गणेश और कार्तिकेय को भी न चढ़ाया जाता होगा। गणेश को तो चाहे चढ़ाया भी जाता हो, उन दूसरे महाशय को तो नहीं ही चढ़ाया जाता। मगर यह क्या बात में से बात निकलती आती है! यह मेल्ह-मेल्हकर बतियाना भी खास बनारसी चीज है और मैंने बनारस से और कुछ सीखा हो चाहे न सीखा

हो, बात का यह ढंग ज़रूर सीख लिया है। तो मैं यह कह रहा था कि जहाँ बनारस में सभी कुछ धीरे चलता है, वहाँ गायें और सांड़ भी मजे से बीच सड़क पर टहलते रहते हैं—जैसे जनवासे से निकल कर किसी के यहाँ द्वारचार में जा रहे हों। जी हाँ, उनके ठाट ऐसे ही रहते हैं। कुछ नई रोशनी के बद-दिमाग, सिर-फिरे मोटर वाले अपनी मोटर की शान में हार्न बजाते हैं और दस-दस मिनट तक बजाते चले जाते हैं, मगर हमारे इन नन्दियों और उनकी बधुओं के कान पर जूं भी नहीं रेंगती। वह उसी तरह, बिलकुल उसी तरह, सन्यासी के चित्त की जो परिभाषा हमारे दर्शन-ग्रन्थों में दी हुई है, उसी एकदम निर्विकार भाव से बीच सड़क पर बैठी मुदित मन से पागुर करती रहती हैं, यहां तक कि बहुत बार हिन्दू मोटर चालक भी क्रोध के घूर्णित आवर्त में पड़ कर डंडे से अपनी माँ और उसके पति की पूजा कर चलते हैं। शायद यही कारण है कि वहां पर जिस प्रकार साहित्य के लिए उसी प्रकार एक मोटर चालक के लिए यह ज़रूरी होता है कि उसे लाठी चलाना भी आना चाहिए, खाली मोटर चलाना या कलम चलाना आने से बनारस का इम्तहान नहीं पास किया जा सकता। मगर यह देखिए, मैं फिर बहक गया। मैं यह कहना चाहता हूं कि नन्दी और उसकी वधू, काशी को विश्वनाथ की नगरी जानकर उसे अपनी ही रियासत समझते हैं। इसलिए उनका इतराकर चलना स्वाभाविक है। इससे नतीजा यह निकला कि बनारस में जो चतुर्दिक् आलस्य का सामंजस्य रहता है और बीच सड़क पर आदमी और जानवर और मकान ऊँघते-से जो खड़े रहते हैं, उसकी और कोई वजह नहीं है, बस यही कि काशी के अखिल चराचर जीव अपने को विश्वनाथ का पुत्र या पौत्र या प्रपौत्र या और कुछ नहीं तो भगवान विश्वनाथ की प्रजा तो समझते ही हैं, इसलिए भांग-बूटी के सेवन को तो वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। और यह तो आप जानते ही

होंगे, और न जानते होंगे तो दो चार बार विजया का स्वाद लेकर देख लीजिए, कि जहां भंग का गोला पेट में पहुँचा वहां बस, फिर कुछ नहीं रह जाता, सब लोप हो जाता है, और आदमी उस द्युलोक में पहुंच जाता है जहां शंकर का मायावाद उसकी समझ में अनायास आने लगता है। यह विजया सेवन का ही प्रसाद है कि बनारस का नन्हा-सा दूध पीता बच्चा भी दार्शनिक की तरह बात करता है। वह इसीलिए कि प्राचीन काल से विजया का सेवन करते-करते सृष्टि को माया समझने वाला दर्शन उनके रक्तवीर्य का अंश हो गया है और यही कारण है, कि भगवान शंकराचार्य जब दिग्विजय करते हुए काशी पहुँचे, तो रास्ता छेक कर राह में पड़े हुए एक पागल से नागरिक तक के आगे उनको परास्त होना पड़ा; और इतिहास साक्षी है कि उनके दार्शनिक अश्वमेध के घोड़े को बनारस के किसी मनचले सिड़ी आदमी ने यों ही बिना किसी प्रयास के बांध लिया और शंकर को हार माननी पड़ी। और अकेले शंकर ही क्यों, शंकर के सैकड़ों साल बाद जब आल्डस हक्सले नामक एक गौरांग लेखक भारत आया (यह हमारी ही शताब्दी की बात है) तो काशी पहुँच कर उसका भी वही हाल हुआ। हमारी दार्शनिकता का कुछ ऐसा गहरा रंग उसके ऊपर चढ़ा कि बस फिर 'सूरदास प्रभु काली कामरि चढ़े न दूजो रंग।' ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः का पाठ करता हुआ ही वह लौटा और उसने एक पुस्तक लिखी जिसमें बतलाया कि दार्शनिकता तो भारतवर्ष, विशेष कर काशी की हवा और मिट्टी और पानी में घुली हुई है। जी हाँ, यह बात उसने लिखी है, आप भी चाहें तो पढ़ कर देख सकते हैं, 'जेस्टिंग पाइलेट' नामक ग्रंथ में। तुमने तो उसे पढ़ा भी होगा, कुलभूषण? वह तो जो एक बार चिपका तो चिपका ही रह गया, ॐ शान्तिः शान्ति का जाप करते हुए उसने काशी छोड़ी मगर भगवद् भजन का उसे ऐसा कुछ चस्का लगा...इसे भी एक तरह की भांग ही समझिए...कि आज तक

वह उसी चीज़ को रट रहा है और आपको मेरी बात का यकीन न आये तो भगवत शरण उपाध्याय से पूछ लीजिए, वे अभी अभी कांचन देश अमरीका से लौट कर आये हैं और आपको बतलाएँगे कि हक्सले स्वामी प्रभवानन्द या ऐसे ही किसी स्वामी के कनफुँकवा चेले हो गये हैं, गुरु ने उनके कान में गुरु मन्त्र फूँक दिया है और वे गुरु की चिलम भरा करते हैं। और हक्सले खुद तो गये ही अपने साथ डेढ़ हाथ का पगहा भी लेते गये। टी० एस० एलियट और इशरवुड भी उसी रंग में डूबे हुए हैं। कोई ताज्जुब नहीं कि एक रोज तुम उन तीनों को भगवद् भक्ति की तन्द्रा में बंबई की सड़कों पर चिमटा बजाते हुए विचरण करते देखो। और यह सब काशी का प्रसाद है काशी का, काशी की विजया का, काशी की विजय-वैजयन्ती-विजया का। मैंने यह बात पहले से तुम्हें इसलिए बतला दी है, कि अगर मान लो यह चीज़ तुम्हें पसन्द न हो तो इसके खिलाफ कोई इंजेक्शन-विंजेक्शन लेकर आना वर्ना फिर अगर तुम भी अपने से हाथ धो बैठो तो, फिर मुझको दोष मत देना। इसीलिए गीता के चौदहवें अध्याय के सत्ताइसवें श्लोक में भगवान कृष्ण ने कहा है, कि अपनी बुद्धि अपने पास रखनी चाहिए। यों मैं समझता हूँ कि अगर तुम एक बार गीता के उपदेश का उल्लंघन भी करके रवाना होने से पहले, अपनी बुद्धि 'सरगम' की अलमारी में, या ख़्वाजा के घर सहेज कर रखते आओ तो सबसे अच्छा हो। फिर कोई डर नहीं रहेगा, न झंझट न खिटखिट। उसके बिना काम कैसे चलेगा? वैसे ही जैसे यहां पर सबका चलता है। एक जमाना हुआ जब काशी के लोग बुद्धि के खटराग से अपना पिंड छुड़ा चुके। तब से यहां का सारा काम बुद्धि की जगह चेतना से होता है ऊर्ध्व चेतना से। न हो उसकी एक खूराक पांडिचेरी से मंगा लो और न भी मंगाओ तो कोई चिन्ता नहीं, जहां तुमने चवन्नी की भांग वाले चार गोले चढ़ाए कि तुम्हारी चेतना आपसे आप गगन में विहार करने

लगेगी, यहां तक कि स्वयं तुम भी नितान्त निर्लिप्त भाव से उसकी यह आकाश-क्रीड़ा देख सकोगे।

यह काशी है। काशी विश्वनाथ की नगरी है, उन्हीं विश्वनाथ की जो महमूद गजनवी के आने का समाचार पाकर अपनी जान बचाने के लिये कुएँ में कूद पड़े थे। जिस कुएँ में वे कूदे थे, वह अब भी सुरक्षित है, हिन्दू यात्री उसके दर्शन करके कृतार्थ होते हैं और पंडे उससे रोजी चलाते हैं। जी हां, तो यह काशी है। काशी विश्वनाथ की नगरी है, नन्दी अथवा सांड़ विश्वनाथ का वाहन है, गाय नन्दी की धर्मपत्नी है, इसलिए उन दोनों का अखंड राजत्व उस नगरी पर है और वे अपने अधिकारों का उपयोग भी करना जानते हैं। जितनी तेजी से बनारस शहर की आबादी बढ़ रही है, उसको देखते हुए मेरा खयाल है, *मालथस* को अपने सिद्धांतों में और भी संशोधन करना पड़ेगा। आहार ? काशी के निवासियों का वास्तविक आहार तो अध्यात्मवाद है, लेकिन घी-दूध-रबड़ी-मलाई से भी उन्हें कुछ कम प्रेम नहीं है—मगर जब वे उसे खाते दिखलाई दें तो उसे दृष्टि का भ्रम, या एक प्रकार का माया जाल ही समझना चाहिए, क्योंकि वास्तव में उनका आहार अध्यात्मवाद ही है।

बनारस में गति का नाश कर दिया जाता है। क्योंकि गति जीवन का नियम नहीं है। क्योंकि गति से मनुष्य आखिरकार मृत्यु की ओर ही तो धावित होता है ? इसलिये स्पष्ट ही जो चीज़ मनुष्य को मृत्यु के निकट ले जाती हो उसे जीवनाकांक्षी नहीं कहा जा सकता। इसीलिए आगंतुकों के सूचनार्थ काशी के सिंहद्वार पर लिखा हुआ है—

वे सब
जो इस नगर में प्रविष्ट हों
जीवन गतिशील होता है, इस प्रवंचना से
अपने आपको मुक्त कर लें।

शहर में जगह-जगह तुम को लिखा मिलेगा——

गति की सीमा ५ मील प्रति घंटा

चींटी से तेज चलने वाले आदमी और बैल गाड़ी से तेज चलने वाली मोटर का चालान किया जायगा।

पहले, राज्य की यह घोषणा भित्ति-अभिलेख के रूप में शहर की तमाम दीवारों पर अंकित थी मगर जब सब लोग उसे अच्छी तरह जान गए तो पेन्टर 'लाल बन्दर' ने सभी जगह 'शर्बत फौलाद' 'ओजस्विनी' और डाक्टर दीवान सिंह द्वारा गुप्त रोगों के इलाज बजरिए बिजली का इश्तेहार पेंट कर दिया और यह जरूरी भी था क्योंकि देश का स्वास्थ्य बड़ी तेजी से गिर रहा है और मैं तो समझता हूँ, उसका असल इलाज बजरिये शुद्ध दूध और घी और मक्खन और अण्डा और मछली और मांस और फल हो सकता है। लेकिन चूंकि अब इनके दर्शन ही लोगों को नहीं होते, यहाँ तक कि नई पीढ़ी इनका नाम तक भूली जा रही है, इसलिए डाक्टर दीवानसिंह को इसका इलाज बजरिए बिजली ईजाद करना पड़ा। मैं समझ नहीं पाता कि जहाँ लोग तमाम गुप्त रोगों की बात करते हैं, वहाँ भूख का नाम क्यों नहीं लेते, क्योंकि वही शायद सबसे गुप्त रोग है जिससे इस वक्त पूरा देश पीड़ित है और जो इतना गुप्त है कि उसकी बात करने के पहिले बात करने वाले को भी गुप्त यानी अण्डर ग्राउण्ड होना पड़ता है! मगर खैर, मैं इस सबके बारे में ज्यादा नहीं जानता। डाक्टर दीवानसिंह और पेंटर लालबन्दर इसके बारे में ज्यादा जानते होंगे।

देखो कुलभूषण, यह बात ठीक नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि मेरी बात सुनते-सुनते तुम्हें नींद आने लगी है और तुम बार-बार चश्मा उतारकर उसे साफ कर रहे हो। मेरी बातें शायद तुमको बड़ी नीरस मालूम हो रही हैं। मगर मैंने तो पहले ही कहा था कि गाइड तुमने ठीक नहीं चुना। लेकिन जब तुमने मुझे यह काम सौंपा ही है, तो मेरे

किये यह नहीं होने का कि मैं तुम्हें राका निशा में गंगा के वक्ष पर नौका विहार करवा के, विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के मन्दिरों का दर्शन करवा के और चौक के बदलराम लक्ष्मीनारायण के यहाँ का पान और चार सौ रुपये सेर वाला जर्दा खिलाकर और चमचमाती हुई जरी की साड़ियों की मंजूषा साथ कर के और तुम्हारे सर पर पीतल के बर्तनों का एक विराट झाबा और तीन सौ साठ तरह के अचार मुरब्बों का एक मर्तबान लादकर तुम्हें बिदा कर दूँ। मैं तो तुम्हें बनारस की आत्मा से परिचित कराऊंगा। शहरों की भी तो एक आत्मा होती है। उसको जानना जरूरी है। अगर तुमको पहली तरह के गाइड की जरूरत है, तो वैसे गाइड तो यहाँ टके सेर मिलते हैं, सब्जीमण्डी में, मगर मैं भाई जरा दूसरे तरह का गाइड हूँ, तुम्हें वह चीजें दिखलाऊंगा जो दूसरा कोई तुम्हें दिखला नहीं सकता, जिनके बारे में तुमने सोचा भी न होगा कि ये भी देखने की चीजें हैं। भांग, सांड़, भीड़, मदालस गति...यही काशी की आत्मा हैं। तुमने अगर इन्हीं चीजों को नहीं देखा तो समझना चाहिए कि बनारस देखकर भी नहीं देखा। भांग तो तुम्हें सभी जगह मिल जायगा और शायद सांड़ भी और भीड़ भी। और कह नहीं सकता शायद मदालस गति भी। वेश्याएँ भी और मन्दिर और उनके पुजारी भी, पण्डे भी और गुण्डे भी, भिखमंगे भी और गिरहकट भी और राशन के इन्सपेक्टर भी; मगर बनारस उन सब में एक नई बात, एक नया जादू पैदा कर देता है और वही चीज देखने की है। उदाहरण के लिए सभी भलेमानस भांग खाते हैं (मैं तुम बम्बइया बाबुओं की बात नहीं करता) मगर जितनी धार्मिक आचारप्रियता से यहाँ के लोग भंग का सेवन करते हैं वैसा मैंने और कहीं नहीं देखा। मानों भंग ही उनके और भगवान भूतनाथ के बीच का आत्मिक सूत्र हो। सांड़ के भी दर्शन मुमकिन है तुम्हें बम्बई में कहीं हो जाते हों। गो मैं समझता हूँ अगर कहीं फ्लोरा फाउन्टेन पर या एरास सिनेमा के सामने एक सांड़ दीख

जाय तो सारी ट्रैफिक ही रुक जाय और अनेक पारसी और गुजराती तरुणियों और सेठों का हार्टफेल हो जाये सो अलग। मगर यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। यहां साँड़ सड़क के बीचोबीच परम शांति से बैठे छायावादी-रहस्यवादी ढंग से मन्द मन्द मुस्कराते रहते हैं और कभी ट्रैफिक नहीं रुकता, किसी का हार्टफेल नहीं होता, ऐसी कोई बात काशी के पाँच हजार साल के इतिहास में आज तक कभी नहीं हुई। इसीलिए हमारी म्युनिसिपैलिटी भी, जिसे हम लोग नगरपालिका के नाम से पुकारते हैं, कभी सांड़ों के इस जन्मसिद्ध अधिकार में बाधक नहीं होती और अगर हुई तो मुझे पक्का यकीन है कि इस हस्तक्षेप के विरुद्ध सांड़ों का एक जबरदस्त नागरिक-स्वतन्त्रता का आन्दोलन उठ खड़ा होगा जिसमें काशी के रहने वाले भी साँड़ों का साथ देंगे क्योंकि चिरकाल से सांड़ों को बीच सड़क में देखते-देखते उनका यह विश्वास हो गया है कि यही बात शास्त्रानुमोदित है। यहाँ सांड़, सड़क—(सड़क शब्द की व्युत्पत्ति की खोज करते करते एक पण्डित ने बतलाया है कि 'सड़क' 'सांड़' से निकला है, जैसे 'खान' से 'खनक'। जिस प्रकार खान खोदने वाले को खनक कहते हैं, उसी प्रकार जो सड़क को खूंदे उसे सांड़ कहते हैं। काशी विश्वविद्यालय इस महत्वपूर्ण खोज पर उस पण्डित को डाक्टरेट देने वाला है।) हाँ, तो यहाँ साँड़ सड़क का आभूषण है, हम सांड़ के बिना अपनी किसी सड़क या गली की कल्पना ही नहीं कर सकते। इसीलिये हमारे यहाँ जब कोई नई सड़क बनने को होती है तो सबसे पहले, प्लैन पास करने के साथ साथ नगरपालिका यह निश्चय करती है कि उस सड़क पर किस सांड़ का स्वामित्व होगा, कौन सांड़ उस भूमि पर विचरण करेगा।

भीड़ के बारे में तो तुमसे खैर कहना ही क्या। तुम तो उस लोक से आ रहे हो, जहाँ आदमी नहीं, भीड़ रहती है, जहाँ हर आदमी धूल में खोई हुई पिन के समान भीड़ में खोया रहता है। मगर यहाँ की भीड़

और उस भीड़ में भी अन्तर है। यहाँ लोग भीड़ में अपने को खोते नहीं पाते हैं, और इसलिए प्रकृत्या यहाँ के लोग कम्युनिज्म के ज्यादा पास हैं। यहाँ भीड़ होती है, असम्भव भीड़, लेकिन कोई हलचल या खलबली नहीं, यहाँ के लोग किसी भी तरह की खलबली के जानी दुश्मन हैं, खलबली के क्या माने? लानत है ऐसी जिन्दगी पर जिसमें खलबली हो! यहाँ तक कि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के स्वर्गकामी स्नानार्थियों की विपुल भीड़ में भी जब आपसी ठेलठाल के विलक्षण आमोद-प्रमोद में कन्धे से कन्धा छिलता है, लोग अपना मानसिक सन्तुलन हाथ से नहीं जाने देते और ऐसी अनूठी शान्ति और आत्मविश्वास के साथ प्रकृति की मनोहारी छटा को निहारते हुए और मृदु मन्द स्मित से परस्पर उसकी चर्चा करते हुए, धीर मन्थर गति से पद-संचालन करते हैं, जैसे किसी स्वजन के विवाह में सम्मिलित होने जा रहे हों। और यही चीज काशी है, यही काशी की आत्मा है। जिसने इस चीज को नहीं समझा उसने कुछ नहीं समझा—काशी की आत्मा को उसने नहीं देखा। तुम उस मर्त्य-लोक से आ रहे हो जिसमें त्वरा ही देवी है, गति ही जिसका विधाता है, जहां कर्म की धमा-चौकड़ी है, जहां से ब्लिट्ज़ नामक पत्र निकलता है और जहां जीवन को भी एक ब्लिट्ज़ मान बैठने की मूर्खता करने वाले लोग संख्यातीत हैं। इसीलिए तुम्हारे आगमन की सूचना से मैं चिन्ता के सागर में डूबने उतराने लगा हूँ, क्योंकि यहां पर हम ज्ञानी लोग कर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखने के अभ्यासी हैं।

कुलभूषण, यहां की हर चीज़ निराली है। जिस कवि ने 'काशी तीन लोक से न्यारी' लिखा है, वह निश्चय ही अदम्य प्रतिभा का आदमी था। संसार के किसी भी नगर से काशी की तुलना नहीं हो सकती। काशी आधुनिकता के महासागर में प्राचीन संस्कृति का एक बीहड़ टापू है, जहां भारत की प्राचीन सभ्यता ने शरणागति पाई है।

वैसे ही जैसे ताइवान (फारमोसा) में च्यांग ने। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली जैसी महानगरियों से आने वालों को बनारस बहुत बार कस्बे-जैसा जान पड़ता है। मगर उसमें बनारस का कोई दोष नहीं है। हमारे नगर का अपना एक अत्यन्त मौलिक व्यक्तित्व है जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन उसे वांछनीय नहीं। बस इतनी सी बात है। इसके कारण अगर कुछ लोग बनारस से बिदकतें हों तो बिदकें। जब तक बनारस में ऐसे लोग जीवित हैं जिन्हें बनारस इतना प्यारा है कि वे कभी उसके बाहर जाने का अपवित्र विचार भी मन में नहीं लाते, चाहे कोई उन्हें कूप-मंडूक ही क्यों न कहे, जब तक ऐसे लोग जीवित हैं जो एक बार बनारस की खातिर स्वर्ग से भी मुँह मोड़ सकते हैं, तब तक बनारस उन-उच्छृंखल आधुनिकताप्रेमियों को गंभीर उपेक्षा से देख सकता है, क्योंकि उसे अपने इन्हीं प्रेमियों पर गुमान है।

सवेरे का समय है। ये लोग अंगौछा, और कुछ लोग कुशासन भी, बगल में दबाए, कोई नंगे पैर कोई खड़ाऊं पहने कहां भागे जा रहे हैं? ये गंगाजी की ओर अभिमुख हैं। राम नाम की लूट है लूट सकै तो लूट। इसीलिए, सब उसी लूट के लिए भागे जा रहे हैं। माँ भागीरथी के प्रताप से बनारस का कोई व्यक्ति कभी नरक में नहीं जाता, स्वर्ग में एक पूरा मुहल्ला बनारस वालों के लिए रिजर्व रहता है। इसीलिए यहाँ लोग सदा गंगा में अपने पाप धोने का खयाल रखते हैं, किसी की गठरी छोटी होती है, किसी की बड़ी। यह देखिए, श्री आनंदमाधव चले आ रहे हैं। आप सी० आई० डी० के आला अफसर हैं। आपने सन् २१ से लेकर आज तक हजारों राजनैतिक कार्यकर्ताओं को पकड़ा होगा। सुना है, सन् ४२ में उन्होंने विद्रोहियों को ऐसे अनोखे अनोखे, मनुष्य की बुद्धि की सीमा का अतिक्रम करने वाले तरीकों से यातनाएं दीं कि लोगों का अनुमान है कि यमराज ने रौरव नरक का एक विशेष दूत उनके पास मन्त्रणा के लिए भेज दिया था। घीसापुर में उन्होंने लोगों

को सरे बाजार कोड़े लगवाए, जौनपुर में उन्होंने लोगों को करेंट लगवाई, गाजीपुर में उन्होंने डेढ़ साल के बच्चे को मां की आँखों के सामने आग पर भूना, हरिदासपुर में उन्होंने सिपाहियों को खुले आम बलात्कार करने की छूट दे दी, जिसके फलस्वरूप मैना और सावित्री नाम की दो तेरह-तेरह साल की लड़कियां तो मर ही गईं, औरों का क्या हुआ यह इतिहास के मलबे के नीचे दबा पड़ा है। सरकार में आपकी बड़ी इज्जत है। गोरी सरकार में भी आपकी इज्जत थी और गांधी टोपी की सरकार में भी आपकी इज्जत है। श्री आनंदमाधव का काम वही है, केवल साइनबोर्ड बदल गया है। अब वे यही सब काम अपनी चिर-अभ्यस्त दक्षता से, वामपक्षियों के दलन के नाम पर बलिया और आजमगढ़ में कर रहे हैं। स्वभावतः हमारी रामराजी सरकार ने भी उन्हें बड़ा ऊंचा ओहदा दे रखा है। मगर श्री आनंदमाधव बड़े धर्मप्राण व्यक्ति हैं। पानी बरसे, ओला गिरे, बिजली टूटे, पत्थर पड़े, कुछ हो श्री आनंदमाधव के गंगा स्नान और अन्नपूर्णा के दर्शन में नागा नहीं पड़ सकता। आप उन्हें किसी भी रोज सवेरे पांच बजे नंगे पैर गंगा जी की ओर धावित देख सकते हैं।

मैना और सावित्री दूर देहात की लड़कियां थीं, उन्होंने बस दो बार गंगा स्नान किया। एक बार जब वे किसी मेले के अवसर पर अपनी बुआ के संग नहाने आई थीं, और काफी विस्फारित नेत्रों से उन्होंने काशी की चहल-पहल को देखा था, हिंडोले पर बैठी थीं, लौटते समय कुछ गुड्डे-गुड्डियां, दो-एक झुनझुने और मिट्टी के बबुए, कुछ हरी लाल चूड़ियां ले गई थीं और गांव में उनकी नुमाइश करती फिरी थीं। वह बहुत पुरानी बात है। दूसरी बार तो उन्होंने मणिकर्णिका घाट पर स्नान किया। उस समय उन्होंने न कुछ खरीदा न हँसीं खिलखिलाईं न विस्फारित नेत्रों से किसी को देखा। भीतर ही भीतर सुलगते हुए लोगों ने बाहर एक चिता पर उनकी किशोरी देह को रख दिया और आग लगा

दीं और काली-काली आतुर धूम शिखाएं चिता पर से उठकर श्री आनंदमाधव की धर्म-परायणता का गुणानुवाद करने लगीं। मगर वह बात भी अब पुरानी हो गई। श्री आनंदमाधव निश्शंक भाव से गंगा-स्नान के लिये जाते हैं, मैना और सावित्री के विस्फारित नेत्र अब नहीं हैं।

अब यह देखिए, सेठ द्वारकादास चले आ रहे हैं, दो घोड़ों की फिटन पर सवार, गंगा स्नान कितना चोखा सौदा है, इस विचार पर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए। उनके स्निग्ध तैलाक्त मुखमंडल से उनके आन्तरिक तेज की देदीप्यमान अनल-शिखाएं विकीर्ण हो रही हैं। उनकी फिटन रुकी और दो सण्ड-मुसण्ड कसरती नौकरों ने दौड़कर फिटन का दरवाजा खोला और उनके पृथुल शरीर को सहारा देकर बाहर निकाला, फिर उन्हें घाट पर ले जाकर प्रतिष्ठित किया और उनके शरीर में गुल-रोगन की मालिश करने लगे। सेठ द्वारकादास गल्ले के बहुत बड़े अढ़तिये हैं, हजारों मन गेहूँ-चावल उनकी खत्तियों में भरा है, मगर वह भूखों के लिए नहीं है, उनके लिए है जो कीमत दे सकते हैं। रुपये का विषधर सर्प उन खत्तियों का पहरेदार है। खास उनकी आढ़त के सामने लोग मरते हैं। लोग तो सभी जगह मरते हैं, लोग पैदा ही इसलिए होते हैं कि मरें! फिर?

यह देखिए, यह कौन रिक्शे पर सवार चला आ रहा है। चेहरे पर झाड़ू-सी पुती हुई, चुचके आम जैसा निस्तेज, पीला चेहरा। ये राशन के एक इंसपेक्टर हैं, श्री राम वचन शर्मा। ये पहले सेठ द्वारका-दास के यहां मुनीम थे अब राशन इंसपेक्टर हैं। मगर उन्हें सेठ जी की खत्तियों का कोई हाल मालूम नहीं। उन्हें बस अपने घर का हाल मालूम है—उस माया का जो उन्होंने जोड़ी है, उस माया का जो उन्हें जोड़नी है; उस घर का जो उन्होंने बनवाया है और उस घर का जो उन्हें बनवाना है; उस लड़की का जिसका गर्भ उन्होंने गिरवाया है और

उस लड़की का जिसका गर्भ उन्हें गिरवाना है; उस सुनहले काम की साड़ी का जो उन्होंने दालमण्डी में किसी को दी थी और उस नौ तोले के हार का जो उन्हें कबूतर बाजार में किसी कबूतरी को देना है। इतना ही ज्ञान बहुत है। फिर, यह सब पैसे का खेल है। अधिक ज्ञान होने से चांदी का यह महल गिर जाएगा। फिर, खिलाने वाला तो भगवान है।

ठीक कहा तुमने कुलभूषण, अब छोड़ो भी इस नीरस वार्ता को और आओ घाट की बहार देखें। बनारस की सुबह मशहूर है।

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर,

तुलसीदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत...

सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम

राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम

हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण

जब जब भीर परी संतन पर......

मेरे तो गिरधर गोपाल......

सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, गीता, उपनिषद्—अपनी अपनी इच्छानुसार। पंचमेल गानों का विलक्षण समवेत-स्वर। कोई मन-चला विद्यापति भी गा चलता है, कोई उससे भी आगे बढ़कर कोई उपयुक्त फिल्मी गाना भी छेड़ देता है। गरज भारतीय संविधान में उल्लिखित पूरी स्वतन्त्रता और कहीं नहीं तो यहाँ जरूर दिखलाई देती है।

नहाने और बक-ध्यान के बाद मन्दिरों के घण्टे। और फिर तंग गलियां, भीड़-भाड़, असंख्य पैरों की कीचड़, जूतों के चोर, फूल, चांदनी के या कनैल के, और सबको जल्दी स्वर्ग के पासपोर्ट की, इसीलिए बहुत कुछ राशन के दूकान का ही दृश्य यहां भी—अरे भाई,

क्यू लगा लो परेशानी की कोई बात नहीं है, सबकी बारी आएगी—सब जगह तो लोग मेल्हेंगे, बस यहीं उनको सबसे ज्यादा जल्दी सताती है—जैसे धर्म भी कोई सिर का बोझ हो जिसे उतार कर पटका और भागे। भला यह भी कोई बात है ? भेड़ों को नदी पार करते देखा है कुलभूषण ? हां तो बस वही बात है। कुछ क्रियाएं हैं जिन्हें सब एक ही तरह करते हैं और जल्दी-जल्दी करके भाग जाना चाहते हैं—नून-तेल-लकड़ी में जुतने या ब्लैक करने या घूस लेने या झूठे मुकदमे की जिरह करने या मुर्दा मरीज का इलाज करने या यह सब कुछ भी नहीं तो किसी से नजरिया लड़ाने, किसी पर अपनी वहशियाना भूख तोड़ने। इसीलिए हाथ बढ़ा, घण्टा बोला टन्, इस मूर्ति को हाथ जोड़ा, उस मूर्ति को जल चढ़ाया और उस मूर्ति को फूल...

प्रातः मन्दिर, सायं मण्डी, जीवन का यह क्रम है सुन्दर।

मोहनलाल द्विवेदी

यह दालमण्डी है। रही होगी कभी दाल की मण्डी, अब तो रूप की मण्डी है और जवानी की मण्डी। दाल की मण्डी रही होगी तो दिन को यहाँ रौनक होती होगी, कन्धे छिलते होंगे। अब तो रात को ही यह आलम होता है। नया आदमी जो इस मण्डी में आता है, वह बहुत कुछ डरा, सहमा और सबसे नजरें चुराए हुए सा चलता है—नजरें चुराए हुए सबसे पहले अपने आप से और नजरें चुराए हुए कोठों पर से झांकती हुई, ग़ाज़े और काजल और भूख और खून में लिपटी हुई, खरीदोफरोख्त की जाने वाली जवानियों से, जो किसी धर्मशाले के रजिस्टर की तरह सबके लिये खुली रहती हैं—जो भी चाहे उठा कर स्याही से उस पर अपना नाम दर्ज कर दे। और नजरें चुराए हुए उन दूसरे लोगों से जो हवाखोरी या जिस्मखोरी के लिए उधर आ निकले हैं।

मगर सब का हाल ऐसा नहीं है। बहुतों का तो यह रोज का शगल है। शाम हुई नहीं कि नहाये-धोये, भांग-बूटी छानी, नाखूनी किनारे की बारीक धोती और तंजेब का चुन्नटदार कुर्ता निकाला (अक्सर उसमें सोने की बटनें होती हैं जो सोने की ही चेन से जुड़ी रहती हैं), पम्प जूता पांव में डाला, कपड़ों में थोड़ा-सा इत्र लगाया, ख़स या हिना या शमीमेनाज, आँखों में हल्का-सा सुरमा लगाया और चल पड़े लाम पर। पहुँचे गली में। पहले दो पान जमाये। फिर गजरे खरीदे, एक दाहिनी कलाई में लपेटा, एक गले में डाला। बस अब और कुछ नहीं चाहिये। ताम-झाम पूरा है। मस्त सांड़ की तरह घूम रहे हैं। मजे में, किसी साले का डर पड़ा है! जिनके मूंछें होती हैं वह ऐसे मौकों पर मूंछों को बड़ी शान से ऐंठ लिया करते हैं। जिनके मूंछें नहीं होतीं, तेवर उनके भी वही होते हैं, वह बस सिगरेट का धुआं छोड़ने लगते हैं। सब मस्त सांड़ एक से कसीले भो नहीं होते। बहुतों की आँखें गड्ढे में धंसी होती हैं। मगर किसी को कोई रुकावट नहीं है। यह तो रूप और जवानी की मंडी है। यहाँ तो सारा खेल पैसे का है, जिसके पास पैसा है वह यहाँ आ सकता है। चाहे वह अन्धा हो, लंगड़ा हो, कोढ़ी हो, सब उसे पीर जी की खाक की तरह माथे चढ़ायेंगे। मगर जिसके पास पैसा नहीं है, वह दुनिया का सबसे खूबसूरत, कसीला, गबरू जवान, मुजस्सिम सैन्डो ही क्यों न हो, उसके लिए यहाँ कोई गुञ्जाइश नहीं। यही इस दालमण्डी का नियम है। इस एक नियम का पालन करते ही, जैसा कि परी कहानियों में होता है, दालमण्डी हुस्न और जवानी की एक शादाब वादी की तरह तुम्हारी आँखों के आगे फैल जाती है। बड़ी दिलचस्प गली है यह, जिसके दोनों ओर बेपनाह हुस्न है, गुनाहों का नोचा और चबाया हुआ, और है वह जवानी जो कभी नहीं थकती, थकती नहीं महज मर जाती है। जो रहती है, रहती है—फिर एक रोज नहीं रहती। इतना ही सा जिसका इतिहास होता है। इतिहास? हां,

दो शब्दों में, जवानी यानी गैरों का आसान चारा मिस्ल चरी के जिसे मवेशी चर जाते हैं, जवानी यानी जवान उमङ्गों की सर्द लाश यानी बुझी हुई राख की तरह बुझी हुई आँखें और बुझे हुए दिल। जवानी... और खूसट अधेड़ औरतें यानी जिन्दगी के जहर की तलछट।

बस अब तुमने सब देख लिया कुलभूषण। अब तुम लौट कर लोगों को बतला सकते हो कि बनारस इत्र और बंदर और पान और पीतल और रेशम और सांड और भांग का शहर है, जहां नदी रेंगती है, आदमी रेंगता, है, सांड रेंगते हैं, घोड़े रेंगते हैं, एक लफ्ज में, जिन्दगी रेंगती है जहां, तेज चलना मना है, जो पिछले तीन हज़ार साल से ऐसा ही है और अगले तीस हजार साल तक ऐसा ही रहेगा। प्रमाण? ज्योतिषाचार्य, ज्योतिष-शेषनाग, ज्योतिष-कलाधर, ज्योतिष-नीलमणि, ज्योतिषाम्बुधि, ज्योतिष-ऐरावत, दैवज्ञ दिवाकर पण्डित वेदवाक्यानंद ने कहा है जो यहीं बड़ी पियरी पर रहते हैं।

प्रेत लीला

आँख के अन्धे, नाम नयनसुख । खाने को चोकर-भूसी, पहनने को नीला आकाश और भूमि का नाम हेमांचल ।

सब उन्हीं राजा इंद्र विक्रम सिंह की महिमा है । सौ साल से भी ज्यादा पुरानी बात हुई ।

राजा साहब को संस्कृत साहित्य से गहरा प्रेम था । एक रोज़ मन में तरंग आई, उन्होंने सारे नाम लिये और एक सिरे से बदल डाले । सुलक्षणा, विनीता, आर्द्रा, हेमा, पिंगला, ताम्रवर्णी, विद्युल्लता, किंकिणी, रूपमाला—नदियं
हेमांचल हो गया

दंत कथा है
कहानी है :—

कहानी यह है कि एक रोज जब प्रजावत्सल राजा इंद्र विक्रम सिंह भेष बदल कर अपने राज्य में घूम रहे थे (राजा विक्रमादित्य के समान उनका भी यही अभ्यास था) तब उन्होंने किसी मेले में एक कंजर छोकरी को नाचते देखा। राजा साहब ने उसको देखा और उनके पैर वहीं बंध गए। यह रूप, यह जवानी जो आज आँखों के सामने थी पहले कभी सपने में भी उन्होंने न देखी थी। राजा साहब बस खड़े देखते रहे, देखते रहे; अनिमेष, छिन्नवाक्...

रूप ऐसा कि जैसे रात, अथाह, भेदभरी, कि जैसे सूने में दूर-दूर तक मह-मह महकता हुआ चम्पे का पेड़, कि जैसे गुलाब की अर्धखिली कली जो किसी जवान दोशीज़ा की तरह बयकवक़्त लजीली भी है और ढीठ भी...

और जवानी ऐसी कि जैसे समुद्र में ज्वार उठ रहा हो, कि जैसे सावन-भादों की बरसात (मेघा गरजे बिजुरी तड़पे, आए नहीं कंत हमार...) कि जैसे गांव में कहीं आग लगी हो और सब रहने वाले सुध-बुध खोकर इधर-उधर भाग रहे हों—

चकित मृगी-से नेत्र, मुँह ज़रा-सा खुला हुआ जैसे चौंककर हिरनौटे ने मुंह खोल दिया हो, और सांचे में ढले हुए सुन्दर सजीले वक्ष, कि जैसे गांव की छोरियां सिर पर कलसा धरे झूमती चली जा रही हों और इधर-उधर। नज़र दौड़ा रही हों कि पता लगाएं कहाँ आग लगी है ! और शरीर लहराए ऐसे कि जैसे नीले सरोवर में चन्दा की चाँदनी।

और राजा इन्द्र विक्रम सिंह खड़े देखते रहे उस कंजर छोकरी को—मुशकिल से पंद्रह-सोलह का सिन, लंबी छरहरी देह, गुलाबी रंग, आँखें जैसे खिंची हुई कमान, मुँह अनार की कली, बालों की मोटी वेणी सुन्दर गोल नितंबों के नीचे तक नागिन-सी बल खाती हुई और हवा में लहराता हुआ उसका वह धानी दुपट्टा और वैसे ही फिर-किनी की तरह नाचता हुआ उसका वह लाल रेशमी लंहगा जिसके

नीचे से कभी-कभी उसकी सुडौल गोरी जाँघें तक दिखायी दे जातीं थीं। और घुंघरुओं का सुरीला स्वर...

इन्दर की सभा थी। नर्तकी के अंग-अंग से शराब की फुहारें छूट रही थीं और पीने वाले छक-छक कर पी रहे थे। इन्हीं मदहोश पीने वालों में राजा इंद्र विक्रम सिंह भी थे। सारे बांध टूट गए थे और उन्हें रत्ती भर होश नहीं था कि वह कौन हैं, कहां हैं, क्या देख रहे हैं...

इसके बाद कहानी यह कहती है कि तीन दिन और तीन रात तक वह इसी तरह भूखे प्यासे खड़े रहे। लोगों ने उन्हें पहचान लिया और नर्तकी ने उन्हें पहचान लिया। राजा साहब खड़े देखते रहे और वह कंजर सुन्दरी तीन दिन तीन रात तक उसी तरह नाचती रही और नाचते-नाचते गिर पड़ी और फिर नहीं उठी।

तब कहीं राजा साहब की मोह निद्रा टूटी। देखते-देखते तमाम बैद-हकीम पहुँच गये, मगर लड़की के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे और कोई उसे जिला न सका।

उस लड़की का नाम हेमा था। उसी के नाम पर राजा इन्द्र विक्रम सिंह ने अपने राज्य की सबसे तेज़, सबसे बड़ी नदी, तिन्नी, का नाम बदल कर हेमा और महुवर का नाम बदल कर हेमांचल कर दिया। तो भी उनके हृदय को जो पीड़ा मथ रही थी वह किसी तरह कम न हुई और ठीक एक पखवारे के बाद उनका भी प्राणान्त हो गया।

जनश्रुति है कि आज भी वहाँ पर इन दो अनोखे प्रेमियों की अतृप्त, मिलनातुर आत्माएँ पथरीले शून्य में भटक रही हैं। कुछ तो यहाँ तक कहते हैं कि हर पूर्णिमा को गाँव के बाहर खुले मैदान में, आकाश के नीले चंदोवे के नीचे या आम-जामुन-महुए के नीचे डफ ठनकने लगता है, बांसुरी लहराने लगती है, घुंघरुओं की छूमछनन से सिवान गूँज उठता है और रात की रात यह प्रेत लीला चलती रहती है। कभी-कभी तो ये दोनों छायाएँ काफ़ी दिन निकल आने पर सर-

कती देखी गयी हैं—आगे-आगे हेमा, पीछे-पीछे राजा इन्द्र विक्रम सिंह। दोनों धीरे-धीरे सरकती जाती हैं और दूर होते-होते, क्षितिज पर पहुँच कर, जहाँ धरती और आकाश का आलिंगन होता है, हवा में घुल जाती हैं।

कई लोगों ने इस चीज़ को अपनी आँख से देखा है। और इतना ही नहीं बूढ़े-पुराने लोग तो हेमा नदी की बाढ़ में भी इसी तरह की प्रेत-लीला देखते हैं। उनका कहना हैं कि पहले तिन्नी में कभी बाढ़ न आती थी और अब हर साल आती है, साल में दो-दो और तीन-तीन बार आती है। तो यह बात क्या है? बात कुछ नहीं है, सब प्रेत-लीला है। हेमा नदी में ही तो अब वास है उस कंजर छोकरी का...बेचारी प्यासी मर गई थी। प्यासी आत्माएं सदा ऐसा ही उत्पात मचाती हैं। बस यही समझिए कि उधर प्रेम की नदी में पूर आया और इधर बाढ़ आयी।

जरूर ऐसी ही कोई बात है, तभी तो इंसान का उसके ऊपर कुछ बस नहीं चलता। और चले भी कैसे, अदृष्ट का खेल ठहरा।

न जाने कितनी बार इसी तरह प्रेम की नदी में पूर आया और इसी तरह बाढ़ आई—और हेमा में आई तो उसी से लगी हुई ताम्रवर्णी में आयी और ताम्रवर्णी में आई तो आर्द्रा में आई और आर्द्रा में आई तो किंकिणी में आई और इसी सब में सारा देश तहस-नहस हो गया। बार-बार बस्तियाँ उजड़ीं, गाँव के गाँव बह गए। एक दो नहीं, सौ-पचास नहीं, हज़ारों गाँव...

और उससे बचने का कोई उपाय न था। क्योंकि सब प्रेत-लीला थी...

और इसी तरह न जाने कितनी दशाब्दियाँ बीत गयीं और यह प्रेत-लीला चलती रही—गाँव बहते रहे, घर उजड़ते रहे, लोग किस्मत के मारे सब सहते रहे।

पण्डित कवीश्वर उपाध्याय पहले हेमांचल प्रदेश के सिंचाई-मंत्री थे, लेकिन जब इधर, पिछले कुछ वर्षों से, सिंचाई का पोर्टफोलियो स्वयं भगवान इन्द्र ने अपने हाथ में ले लिया और अपने कज्जल श्याम ऐरावत पर बैठ कर मेघों का संचालन करने लगे, तब यह आवश्यक हो गया कि पण्डित कवीश्वर उपाध्याय को दूसरा कोई पोर्टफोलियो दे दिया जाय।

तीन कारणों से ऐसा करना जरूरी था। एक तो इसलिए कि पण्डित कवीश्वर उपाध्याय जैसे अचूक धनुर्धर (कि धुरंधर, पता नहीं ठीक शब्द क्या है!) देश-सेवी की सेवाओं के बिना देश जी नहीं सकता था वैसे ही जैसे बिना डालडा खाये और बिना लाइफ ब्वाय साबुन से नहाये जीना असंभव है। निदान उनसे देशहित में कोई न कोई काम लेना ही था। अर्थात् उन्हें कोई न कोई काम देना ही था। दूसरा कारण यह था कि भगवान इन्द्र ने जिस अतिरिक्त उत्साह से अपने इस नए पोर्टफोलियो को संभाला था, उससे एक नई परिस्थिति पैदा हो गयी थी जो काफी भयावह थी और जिसका कुछ न कुछ उपाय करना आवश्यक था। और तीसरा कारण, सबसे आनुषंगिक अथच सबसे प्रबल यह था कि पण्डित कवीश्वर उपाध्याय मुख्य मंत्री पंडित चतुर्भुज शर्मा के दामाद थे।

पंडित कवीश्वर उपाध्याय को दूसरा कोई पोर्टफोलियो न देकर बाढ़ और निर्माण-मंत्री ही क्यों बनाया गया, इसके भी दो कारण हैं।

एक तो यह कि पंडित कवीश्वर उपाध्याय बहुत बड़े सिद्ध और तांत्रिक हैं और हेमा के संबंध में जो जनश्रुति प्रचलित थी उसको देखते हुए वहाँ वास्तव में ऐसे ही आदमी की जरूरत थी जो काम पड़ने पर मंत्र-बल से भी उसको वश में कर सके; क्योंकि यह सिद्ध हो चुका था कि वह लोहे-पत्थर, ईंट-गारे-सीमेंट के बन्धनों को मानने वाली न थी। अब तक बीसियों बार बाँध बने और पहली ही बाढ़ में बह गये और ऐसे बहे कि फिर ढूँढ़े से भी न मिले, एक ईंट तक तो मिली नहीं। बड़ी सरकश, बड़ी ढीठ, बड़ी मस्त नदी है हेमा। बिलकुल उसी कंजरी का नमूना समझो। कैसा ही बांध बनाओ वह आसानी से थोड़े ही बंधेगी। उसे तो मंत्र-बल से बांधना होगा और इस काम के लिए पंडित कवीश्वर उपाध्याय से अधिक योग्य और कौन हो सकता है जो जीवन भर अपने मंत्र-बल से किसी न किसी को बांधते ही रहे हैं!

इस पद पर पंडित कवीश्वर उपाध्याय की नियुक्ति का दूसरा कारण यह था कि पंडित कवीश्वर उपाध्याय का खानदान सरकारी ठेकेदारों का खानदान था, जिन्होंने अब तक न जाने कितना निर्माण कार्य किया था और जहां-जहां उन्होंने कार्य किया वहाँ-वहाँ लोग आज तक उनके लिए सर धुनते हैं। और इस पद पर ऐसे ही आदमी की जरूरत भी थी जिसकी घुट्टी में यह निर्माण कार्य पड़ा हो। यह भूलने से नहीं चलेगा कि हेमांचल का (तब उसका नाम महुवर था) सेंट्रल जेल पंडित कवीश्वर उपाध्याय के लकड़दादा पंडित रघुबर दयाल उपाध्याय के भी दादा पंडित रामगरीब उपाध्याय ने बनवाया था। आज तक उसकी ऊँची-ऊँची दीवारें टस से मस नहीं हुई हैं और अपने निर्माता के अक्षय कीर्ति-स्तंभ के रूप में खड़ी हैं। ये वंश परम्पराएँ युग-युगान्तर तक चलती हैं। उनका महत्व कम नहीं किया जा सकता।

दो एक मूर्खों ने मुख्य मन्त्री जी को तसवीर का दूसरा पहलू भी समझाने की कोशिश की और डांटकर भगा दिये गये।

पंडित कवीश्वर उपाध्याय को अपने जीवन के वह आरंभिक दिन आज भी अच्छी तरह याद हैं।

सन् बीस में जब वह मैट्रिक की पढ़ाई छोड़कर कांग्रेस में दाखिल हुए और जांघिया-फतुही पहने, झोला लटकाये, अकसर नंगे पैर गाँव-गाँव घूमकर कांग्रेस का प्रचार करने लगे तब उनके घरवालों ने, एक माँ को छोड़कर बाकी सब ने, यही कहा था कि ससुरा कवेसुरा आवारा निकल आया, बहेतू निकल गया —

और वही ससुरा कवेसुरा सन् इक्कीस से लेकर सन् बयालिस तक पाँच बार कृष्ण-मंदिर की सीढ़ी-मचान चढ़ता-फलांगता आज उस जगह पर पहुंचा था जहाँ वह पंडित कवीश्वर उपाध्याय था और मुख्य-मंत्री पंडित चतुर्भुज शर्मा का जमाई था और बाढ़ व निर्माण मंत्री के स्पृहणीय पद पर था...

नदी की ठीक धारा में पड़ जाय तो बहता तिनका भी कभी-कभी मणियों के देश पर जा लगता है। बड़ी अद्भुत बात है। पंडित कवीश्वर उपाध्याय के शब्दों में—सब भाग्यलिपि है!

पंडित कवीश्वर उपाध्याय अपने सामने, चौड़ी सी मेज पर हेमांचल का एक खूब ही बड़ा मानचित्र फैलाये और हाथ में एक मोटी-सी लाल-नीली पेंसिल लिये स्थिति को समझने की कोशिश कर रहे थे। उनके विभाग के तीन उच्च अधिकारी भी उनके साथ ही नक्शे पर झुके हुए थे।

मंत्री जी बात को मनोयोगपूर्वक सुनते जा रहे थे और बिना एक शब्द मुँह से बोले, प्रेमपूर्वक ताम्बूल-चर्वण करते हुए, सामने के नक्शे पर हाथ की लाल-नीली पेंसिल से कुछ निशान बनाते जा रहे थे। कहीं गोल-गोल निशान बना देते और कहीं बिन्दी रख देते। वही समझें अपने उन निशानों का मतलब मगर हाँ इतना ज़रूर है कि देखनेवालों पर उसका अभीष्ट प्रभाव पड़ रहा था। सारी बात सुन चुकने के बाद मंत्री जी आरामकुर्सी पर लंबे हो गये और कुछ क्षणों के लिए गंभीर हो गये। उनके मुखमण्डल का सहज स्मित न जाने कहाँ विलीन हो गया और उनकी मुद्रा ऐसी गंभीर हो गयी कि जैसे किसी गहन चिन्ता ने उन्हें आ घेरा हो। मंत्री जी आंख मूंदे पड़े रहे, और अफ़सर टुकुर-टुकुर उनका मुँह देखते रहे। किसी ने कुछ नहीं कहा गो सब जानते थे कि मक्कर किये पड़ा है।

गंभीर चिन्तन के बाद मंत्री जी ने वैसा ही गंभीर प्रश्न किया—यह बाँध कितना पुराना है ?

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट प्रेम रतन खन्ना ने कहा—श्रीमान् यह बांध अस्सी साल पुराना है। मैंने रेकार्ड देखा था। इसे राजा इन्द्र विक्रम सिंह के बेटे राजा वीर विक्रम सिंह ने बनवाया था।

मंत्री जी ने कहा—तब तो बहुत पुराना हो गया। जीवन सम समझिये इसका एक तरह से। अब मरम्मत से क्या होगा !

खन्ना साहब ने बहुत संभाल कर कहा—आप बिल्कुल ठीक कहते हैं श्रीमान्, लेकिन अच्छा होता अगर आप स्वयं एक बार उसे देख लेते। क्यों गुप्ता साहब ?

राज्य के चीफ़ इंजीनियर गोविन्द कृष्ण गुप्ता ने खन्ना साहब की बात की ताईद की।

तो मंत्री जी बोले—अवकाश तो नहीं है इन दिनों, तनिक भी अवकाश नहीं है। भाषा-आयोग की बैठक है, भवन-निर्माण-समिति की बैठक है, मुख्य मन्त्री जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है, उसकी उपसमिति की बैठक है, और और भी न जाने कितने आयोगों, कितनी समितियों और उपसमितियों की बैठक है! मरने की फुरसत नहीं है। मगर तो भी यह जरूरी काम है, जैसे भी हो कुछ वक्त निकालना ही होगा। अच्छा, ठीक है, मैं बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों का हवाई दौरा कर लूंगा।

खन्ना साहब, गुप्ता इंजीनियर और वह तीसरा आदमी—तीनों ही को इस प्रस्ताव से बड़ी हैरानी हुई, मगर, हैरानी बरतरफ़, तीनों ने ही बड़े संभ्रमपूर्वक, जी हजूरी में सर हिलाया।

लिहाजा मंत्री जी, पंडित कवीश्वर उपाध्याय, हवाई दौरा करके लौट आये और चाहे योगबल से, चाहे और किसी ढंग से हेमा नदी के उस चिरैया बांध का सम्यक् निरीक्षण करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे (जिस पर वह वहुत पहले ही पहुंच चुके थे) कि अब उसकी मरम्मत नहीं हो सकती, मरम्मत की बात भी करना मूर्खता है। अब तो बस नया बांध ही रक्षा कर सकेगा।

और बात मुंह से निकली नहीं कि पूरी हुई वर्ना फिर इंतज़ाम की खूबी ही क्या?

उधर मंत्री जी का हुकुम हुआ और इधर टेंडर की सूचना निकल गयी और टेंडर आ गये और बारह दिन के भीतर एक मोतबर और तजुर्बेकार पार्टी का टेंडर पास हो गया।

टेंडर पास होने के बाद उस पार्टी ने दरख़्वास्त दी कि पुराने बांध को तोड़ने और उसका मलबा साफ़ करने में और भी बाइस हज़ार रुपया खर्च होगा, जिसे पास किया जाय।

यह खर्चा भी पास हो गया । तब तक बाढ़ उतर चुकी थी और कंट्रेक्टर ने हज़ारों आदमियों को काम पर लगाकर, रात-दिन एक करके ढाई महीने के अंदर बांध तैयार कर दिया ।

बांध तैयार हो गया, सरकारी इंजीनियर और दूसरे बड़े अफ़सरों ने जाकर उसका मुआइना किया और पूरी तरह संतुष्ट हुए और कंट्रैक्टर को पौने दो लाख का चेक दे दिया गया ।

जब तक बांध बनकर तैयार हुआ तब तक जाड़े की बारिश के दिन आ गए थे । और इस बार, संयोगवश, जाड़े की बारिश इतनी कसकर हुई, इतनी कसकर हुई कि बांध फिर टूट गया और सैकड़ों गाँव डूब गये । बड़ी भीषण परिस्थिति उत्पन्न हो गयी और तब फिर समस्या पर विचार करने के लिए सम्मेलन बैठा

जैसा हर सम्मेलन में होता है, लोगों ने तरह-तरह की ऊलजलूल बातें कहीं । दो एक मुँह-फट लोगों ने तो यहां तक कह दिया कि कन्ट्रैक्टर ने बहुत पैसा खाया है । सड़ा हुआ मसाला लगाया है । कुछ अजब नहीं कि सारा मसाला उसी पुराने बांध से लिया हो उसने ।

लोगों की ढिठाई देखिए कि यहाँ तक बातें कह दीं । मगर साहब कमाल है पंडित कवीश्वर उपाध्याय का, न तो उनकी त्योरी मैली हुई और न तो कान पर जूं ही रेंगी । उन्होंने बात एक कान से सुनी और दूसरे कान से निकाल दी । फरीकैन की इस आपस की जूतम-पैज़ार से सरकार को क्या वास्ता ! सब एक दूसरे को डाउन करने में लगे रहते हैं और यह छींटाकशी तो रोज का खेल है । मुर्दे पर सौ मन मट्टी । जो निकलता है उधर से, वही मुट्ठी दो मुट्ठी फेंक जाता है । बांध बह गया ही है, अब जिस के जो जी में आये कहे मगर ईमान की बात यह है कि इधर जैसी बारिश हुई है, वैसी पिछले पचास बरस में नहीं हुई । ऐसी प्रलयंकर वृष्टि में मनुष्य तो मनुष्य स्वयं विश्वकर्मा के हाथ का बनाया हुआ बांध भी बह जाता । हमें व्यर्थ कन्ट्रैक्टर को दोष न देना

चाहिए। इसमें कन्ट्रैक्टर का कोई दोष नहीं है। कमिश्नर, चीफ इंजीनियर और दूसरे तमाम अधिकारियों ने, और खुद मैंने मौके पर जाकर मुआइना किया, नये बांध को अच्छी तरह देखा-सुना। बहुत लाजवाब चीज़ थी, देखकर मालूम होता था कि हेमा तो क्या, हेमा जैसी दस नदियाँ जोर मारें तब भी पच्चीस-पचास साल तक तो कोई उसे हिला नहीं सकता...मगर अब ऐसी बारिश को कोई क्या करे, इसके ऊपर किसी का क्या बस ?

मगर इतनी सब वकालत के बावजूद उस पुराने फर्म शर्मा एन्ड शर्मा, गवर्नमेंन्ट कन्ट्रैक्टर को इस बार ठेका नहीं दिया जा सका। लिहाजा इस बार ठेका लाज़रस एंड चिपेनडेल नाम के फर्म को दिया गया। उन्होंने भी शर्मा एंड शर्मा कि तरह पहले पुराने बांध को तोड़ा। इस तुड़वाई के लिए उन्होंने चौदह हज़ार रुपये चार्ज किए और फिर उन्होंने भी हज़ारों मजदूरों को काम पर लगाया और दिन-रात काम कराके चार महीने में बांध खड़ा कर दिया। बांध तैयार हो गया तो उसे भी देखने के लिए पंडित कवीश्वर उपाध्याय गये और कमिश्नर साहब गये और सबने इस नये बांध की कारीगरी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और अपना यह दृढ़ विश्वास प्रकट किया कि अब हेमांचलवासियों को हेमा से डरने का कोई कारण नहीं रहा। इस बार लाज़रस ऐंड चिपेनडेल ने हेमा के मुंह में लगाम ज़रा ठीक से दी है।

निस्संदेह लाज़रस ऐंड चिपेनडेल ने बहुत पक्का, बहुत मजबूत काम किया होगा, लेकिन पता नहीं क्या बात हुई कि वह भी पहली ही बारिश में भहरा पड़ा और नदी का हलका-सा पूर भी उसे तोड़-ताड़ कर अपने संग न जाने कहाँ बहा ले गया...

अधिकारी वर्ग में चारों ओर तहलका मच गया कि यह क्या मामला है, कोई बांध ही नहीं ठहरता। पंडित जी, पता लगाइये, इसमें कहीं कोई प्रेत-लीला तो नहीं है ?

पंडित कवीश्वर उपाध्याय बोले—सब भाग्यलिपि है। लोगों ने कहा—नहीं पंडित जी, भाग्यलिपि नहीं, प्रेत-लीला है। इसके लिए कुछ क्रिया होनी चाहिए।

पंडित कवीश्वर उपाध्याय ने सबको आश्वस्त करते हुए कहा—आप लोग तनिक भी चिन्ता न करें। मैं एक बार और बांध बनवाऊँगा और अगर इस बार भी वह नहीं ठहरा तो मैं शंकर जी का ध्यान करूंगा, जिन्होंने अपने जटा-जूट में गंगा को रोक लिया था...

तीसरी बार बांध का ठेका दिया गया। इस बार ठेका दुष्यंत एंड शकुंतला नाम की मशहूर गुजराती कम्पनी को दिया गया...

और इस बार भी हेमा का चिरैया बांध बनते ही बह गया।

तब किसी को सन्देह नहीं रहा कि निश्चय ही इसमें कोई न कोई प्रेत-लीला है। हेमांचल की दुखियारी प्रजा को भी जब पूरे समाचार मिले तो उन्हें भी रंच मात्र सन्देह नहीं रहा कि इसमें निश्चय ही कोई न कोई प्रेत-लीला है और कुछ न कुछ क्रिया होनी चाहिये।

उधर पंडित कवीश्वर उपाध्याय ने प्रेत-लीला पर विजय पाने के लिए भगवान भूतनाथ का आवाहन किया और इधर गुस्से से बिफरती हुई प्रजा ने पहुंच कर मिनिस्टर साहब पंडित कवीश्वर उपाध्याय के घर को घेर लिया और अभ्रभेदी स्वर में निनाद करने लगी।

अपने भक्त की पुकार सुन कर शंकर और पार्वती भी आकाश मार्ग से इधर ही आ रहे थे।

जब उनका विमान पंडित कवीश्वर उपाध्याय के घर के ठीक ऊपर पहुँचा तब पार्वती जी ने नंग-धड़ंग अस्थिशेष प्राणियों की इस भीड़ को देखकर और उनके तुमुल-गर्जन को सुनकर शंकर जी से पूछा—कहिये देव, यह मैं कैसी भीड़ देख रही हूँ और वे लोग क्या शोर कर रहे हैं?

शंकर जी ने ईषत् मुसकुराकर कहा—देवि, जगदम्बे, ये मानव प्राणी हैं, हेमांचल की प्रजा हैं और अपने सहस्राधिक कंठों से कह रहे हैं कि सब धोखा है, सब झूठ है। तीनों बार न कोई पुराना बांध तोड़ा गया न कोई नया बांध जोड़ा गया, सब हवाई बातें हैं। शर्मा ऐंड शर्मा, लाज़रस ऐंड चिपेनडेल, दुष्यंत ऐंड शकुन्तला—सब फ़र्ज़ी नाम हैं। असल में सारा पैसा...

इसके बाद शंकर जी ने इतने धीरे से मुँह ही मुँह में कोई बात कही कि वह पकड़ में नहीं आई।

पार्वती जी ने बहुत घबड़ाकर पूछा—मेरा तो सिर चकरा रहा है देव, आप ही कहिए सत्य क्या है ?

शंकर जी ने कहा—देवि, मेरा भी सर चकरा रहा है और अभी तो बस इतना ही सत्य है कि यहाँ पर उतरना ठीक नहीं है। इस प्रेत-लीला पर विजय पाने का कोई मंत्र मेरे पास नहीं है...पाइलट, विमान को वापस कैलाश ले चलो।

एक कामयाब आदमी की तसवीर

यह हरेकृष्ण वकील का बैठकखाना है। हरेकृष्ण वकील की पैरवी कलक्टरी-भर में मशहूर है। उनकी जिरह के आगे अच्छे अच्छे, एक-से-एक ख़ब्बीस गवाह भी, जिनका धंधा ही झूठी गवाही है, चीं बोल जाते हैं। अदालत के अखाड़े में हरेकृष्ण वकील ने अब तक न जाने कितने ऐसे पहलवानों को चित किया होगा! इन्हीं सब बातों से उनकी धाक ऐसी जमी है कि कुछ न पूछिए! और धाक तो एक बार जम गई तो जम गई।

देखिए न आज भी ये पचीस आदमी उनको तलाश करते हुए आए हैं। इनमें कुछ हैं पेशेवर मुकदमेबाज़, जिनके प्राण कचहरी में बसते हैं, जिनकी ज़िन्दगी यही है कि इधर दस बजा, उधर उन्होंने कच-हरी का बस्ता उठाया, और फिर दिन-भर इस वकील के तख़्त से उस

वकील के तख़्त और उस वकील के तख्त से उस मुख्तार के तख्त पर। कहीं बैठे बीड़ी पी रहे हैं, कहीं पान वाले के यहाँ खड़े पान चबा रहे हैं, या अगर कहीं कोई टुटही आरामकुर्सी मिल गयी, तो उस पर लेटे-लेटे ऊँघ ही रहे हैं। पुकार हो गयी तो वाह वाह, नहीं हुई तो भी वाह वाह क्योंकि उन्हें तो गरज मुक़दमे से है, मुक़दमों के फ़ैसल होने से थोड़े ही।

इन पेशेवर मुक़दमेबाजों के अलावा दूसरे लोग वे हैं, जो मुक़दमे की गिरफ्त में कुछ इस तरह आ गये हैं, जैसे कोई हैजे या ताऊन की गिरफ्त में आ जाए, जिनके लिए मुक़दमा और मौत एक ही चीज़ है। मुक़दमे की तलवार के नीचे इन बेचारों की आँखों में वही दर्द होता है, जो कसाई की छुरी-तले बकरे की आँखों में। उन पर एक अजीब परेशानी का आलम होता है। कुर्सी पर वे इतमीनान के साथ बैठ भी नहीं सकते, गोया उसमें कीलें निकली हुई हों। कभी मुसकुराने की भी कोशिश करते हैं, बीच-बीच में एक-दो बातें भी कर लेते हैं; मगर किसी करवट चैन नहीं। तब फिर वे दीवार पर टँगे कैलेन्डर के चित्र को, या वकील साहब के किसी पुराने फ़ोटो को देखने लग जाते हैं—वकील साहब ने जिस साल लॉ की डिग्री हासिल की थी, चोग़ा पहने हुए, हाथ में डिग्री का वह दस्तावेज लिये, या बार असोसिएशन के तमाम साथियों के संग खिंची हुई वह फोटो, उस साल की, जब गवर्नर साहब तशरीफ लाये थे...

पेशेवर मुक़दमेबाज़ अच्छी तरह आसन मार कर बेंच पर बैठे हैं। उनके मुखमण्डल पर स्वर्गिक शान्ति है। कहीं कोई परेशानी की झलक भी नहीं। बहुत चौड़ी-सी, आकर्ण मुसकान उनके चेहरे पर खेल रही है। कइयों ने सुपारी-कत्थे की अपनी थैलियाँ निकाल ली हैं और बड़े इतमीनान के साथ धीरे-धीरे सुपारी कतरते चले जा रहे हैं। सुपारी कतरी, उसमें कत्था-चूना-लौंग मिलाया और मुँह में दाखिल किया,

और फिर सबके पीछे थोड़ी सी काली सुर्ती। इसके बाद फिर और भला क्या चाहिए। जिन्दगी की सारी नियामतें तो एक जगह इकट्ठा हो गयीं! इस तरह सुपारी मुस्तक़िल कतरी जा रही है और हाथ से मुँह में, या एक के हाथ से दूसरे के हाथ में, और बातों का सिलसिला जारी है।

एक ने कहा—वकील हों, तो इन-जैसा! इनके सामने कोई ठहर तो जाए!

दूसरे ने कहा—शेर है, साहब, शेर!

तीसरे ने कहा—आपने शायद कभी ग़ौर नहीं किया, ये जिरह करने लगते हैं, तो हाकिम भी बेचारा हक्का-बक्का हो कर इनका मुँह ताकने लगता है। सच बात है, वकील हो, तो बाबू साहब-जैसा!

पहले वाले आदमी ने कहा—अरे, इनकी जिरह तो आपने देखी होती कन्हाई वाले मामले में। ३०२ का मामला था, कन्हाई ने अपनी बीबी के आशना को गँडासे से काट कर फेंक दिया था, और बीबी की नाक उतार ली थी। साफ़ ३०२ का मामला था; मगर वकील साहब ने उसका बाल भी नहीं बाँका होने दिया।

दूसरे ने कहा—अकेली जिरह की बात नहीं है, वकील साहब का इक़बाल भी बहुत है, सभी उनका दबदबा मानते हैं।

तीसरे ने कहा—अजी दबदबे की ही बात नहीं है, वकील साहब को देवी का इष्ट है, देवी का। आज तक एक केस नहीं हारे वकील साहब!

पहले ने कहा—होगा नहीं देवी का इष्ट! कितने नेम-धरम के पक्के आदमी हैं! चन्द्र टरै सूरज टरै, इनकी पूजा नहीं टल सकती। और हाथ कंगन को आरसी क्या, आज ही देखिए, हम लोग छः बजे से आकर बैठे हैं, डेढ़ घंटा हो गया और अभी तक वकील साहब पूजा पर से नहीं उठे!

इस पर दूसरे आदमी ने फ़तवा दिया—गोसाईं जी ने कितना ठीक कहा है, धर्म के बल से बड़ा और कौन बल है ?

पहले ने कहा—लेकिन, भाई, अकेले धरम के बल से कुछ नहीं होता। सबसे पहली ज़रूरत दिमाग़ की होती है। आदमी के पास दिमाग़ होना चाहिए, इल्म होना चाहिए !

तीसरे ने कहा—ठीक तो कहते हैं आप, मगर इल्म में भी वकील साहब किसी से घट कर थोड़े ही हैं ? ये हज़ारों किताबें जो आप देखते हैं, ये सब-की-सब वकील साहब ने पढ़ी हैं। बहुत क़ाबिल आदमी हैं। इसीलिए तो आपने बात शुरू की नहीं कि वह मामले की तह में पहुँच गये। आपको याद है, उस दिन रामचरन को वकील साहब ने कैसा डपटा था ?

उसी वक़्त हरेकृष्ण वकील अपने दफ्तर में दाखिल हुए। तमाम मुवक्किल अपनी कुर्सियों पर से उठ खड़े हुए। उनके अंग-अंग से इस समय कुछ ऐसा ही तेज फूट रहा था। गोरा रंग, चौड़ा माथा, ज़रूरत से ज़्यादा नुकीली तोतापरी नाक, बाज़ की जैसी तेज़ आँखें, ओठ सुबुक पतले, गाल की हड्डियाँ चौड़ी, छोटी-सी ठुड्डी, अधगंजी चांद, उम्र यही कोई बयालिस-चौआलिस, आँखों पर पतली-सी सुनहरी फ्रेम का चश्मा, माथे पर एक बड़ा-सा चन्दन का तिलक और बदन पर झकाझक सफ़ेद पतले खद्दर का कुर्त्ता और धोती। सेहत बहुत अच्छी, यानी बदन कसा हुआ, गो पहलवानी नहीं। क्या ताज्जुब कि देखते ही उनकी देदीप्यमान कान्ति का रोब दर्शक पर पड़ता है !

हरेकृष्ण वकील मुसकराते हुए अपनी कुर्सी पर बैठे और मुक़दमे की मिसिलों का समझना-समझाना शुरू हुआ।

और इन वकील साहब के संग सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि वे पलक मारते, मामले की तह में पहुँच जाते हैं। उधर मुवक्किल ने आसन जमा कर कहानी शुरू की नहीं कि इधर वकील साहब ने उसे

टोका—बस-बस, बात साफ़ हो गयी! थोड़े में अपनी बात कहिए, अकेले आप का केस तो है नहीं! देखिए न, ये तमाम लोग बैठे हुए हैं, आप बात को ख़ामख़ाह इतना तूल क्यों देते हैं? यह आप वकील को अपना केस समझा रहे हैं, या नानी की कहानी कह रहे हैं!

अक्सर मुवक्किल वकील साहब की इस बात से बहुत ख़फ़ीफ़ होते हैं। मगर क्या करें, दुधार गाय की लात भी सहनी ही पड़ती है। जो वकील साहब की बात न माने और चबर-चबर किये जाय, उसको पट्ठा खड़े घाट दफ्तर से निकाल बाहर करता है, बड़ा जालिम आदमी है। और इसमें तो शक नहीं कि किसी पैरोकार को थोड़े में अपनी बात कहने के लिए मजबूर करने से बड़ा कोई जुल्म नहीं है! बात यह है न कि अक्सर पैरोकार अपने को वकील का लकड़दादा समझते हैं, बीस तरह से घुमा-फिरा कर वारदात को पेश करेंगे, फिर खुद ही उसमें से कानूनी पॉइंट निकाल कर वकील को सुझायेंगे, यानी उनकी ख़्वाहिश यह होती है कि कौर चबा कर वकील के मुँह में दे दें और यही चीज हरेकृष्ण को ज़हर मालूम होती है। इसीलिए तो वे अपने यहाँ ऐसे लोगों की दाल नहीं गलने देते। किसी मुवक्किल ने दफा ३०२, दफा ३०४, दफा ३३६ और दफा ४२० की ज़बान में बात करना शुरू किया नहीं, कि वकील साहब के कान खड़े हुए—वाह· रे, यह हज़रत तो मेरी ज़मीन पर चर रहे हैं!...और जहाँ मुवक्किल ने बड़े तीर मारने के-से अन्दाज़ में बहुत धीमे से, जैसे कोई बड़े राज़ की बात कह रहे हों, अपनी समझ में कोई बड़ा अफ़लातूनी लॉ-पॉइंट पेश किया नहीं कि वकील साहब ने डपटा—बन्द करो जी, कानून मुझे मत समझाओ! इतना क़ानून समझते हो तो मेरे पास क्या झख मारने आये हो, इजलास पर भी खुद ही पैरवी क्यों नहीं कर लेते ?...

और फिर बाक़ी मुवक्किलों की तरफ़ मुख़ातिब होते हैं—मैं तो साहब, हिन्दुस्तानियों की इस लपेट-लपेट कर बात कहने की आदत से

बेज़ार हूँ। अरे भाई, जो कहना हो, थोड़े में कहो और क़िस्सा पाक करो, दूसरे की बात सुनी जाए। मगर नहीं, साहब, यहाँ तो बात नहीं बात की जुगाली होती है! लेकिन यहाँ इतनी फ़ुर्सत किसे है? आप सब के केस समझने हैं, सत्रह-अठारह लोग तो आप ख़ुद ही हैं। और फिर दूसरे केस हैं, उनके काग़ज़ात स्टडी करने हैं, और न करूँ तो बहस क्या ख़ाक करूँगा? आप लोग मुझको हरामख़ोरी के लिए तो पैसे देते नहीं!

वकील साहब की बात से प्रभावित हो कर सब उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं और उन हाँ-में-हाँ मिलाने वालों में वे भी होते हैं, जिन्हें अभी तक इसी बात के लिए झिड़की खानी पड़ी है, या पड़ने ही वाली है। मगर उससे क्या, बात तो ठीक ही कहते हैं वकील साहब। बात थोड़े में कही गयी, समझ में आ गयी, आगे बढ़ो। कोई सब जगह खूँटा गाड़ कर बैठना भी चाहे, तो कैसे बैठे...और फिर वकील-वकील का भी तो फ़र्क होता है। एक वकील वे होते हैं, जिनकी अक़्ल में कुछ धँसता ही नहीं, कैसे भी समझाइए। पता नहीं, वे लोग वकालत करते हैं, या घास छीलते हैं! अरे बाबा, तुमसे वकालत नहीं बनती, तो कोई दूसरा धंधा देखो, अकेली वकालत ही तो नहीं है दुनिया में, हज़ार दूसरे काम हैं। मगर नहीं, करेंगे हम वकालत, और छीलेंगे घास! मगर पहचाननेवाले भी घाघ होते हैं, झट पहचान जाते हैं कि डपोरशंख है, फिर आप बैठे रहिए दूकान लगाए, कौन जाता है झाँकने! बैठे मक्खी मारते रहते हैं। उनका तो काटे वक़्त नहीं कटता। इसलिए उनके पास तो अगर कोई भूला-भटका मुवक्किल पहुंच गया, तो जितने ज़ोर से मुवक्किल वकील साहब से नहीं चिमटता, उससे ज़्यादा ज़ोर से वकील साहब मुवक्किल से चिमटते हैं, चलो दो घड़ी बात का तो सहारा हुआ, और कुछ नहीं तो एक-दो सिग-रेट ही फूँकेंगे। मगर, भाई जिस वकील की चलती हो, जितनी इन

बाबू साहब की चलती है और जिसका दिमाग़ भी इन बाबू साहब जैसा चलता हो, मिस्ल कैंची के, वह क्यों न दो-दो मिनट में सबको छुट्टी करता चले...

कहने का मतलब यह कि हरेकृष्ण वकील का कुछ ऐसा दबदबा है कि चित भी उनकी और पट भी उनकी।...बड़ा जालिम आदमी है, भाई, मगर बला का क़ाबिल वकील है, उसके हाथ में मामला दे कर आप इत्मीनान से सो सकते हैं।

जी जनाब, यह रूपक बाँध रक्खा है हरेकृष्ण वकील ने।...मगर वह चिराग़ तले अँधेरा वाली बात भी किसी ने ठीक ही कही है। दुनिया-भर में वकील साहब का दबदबा है, और खुद उन्हीं का लड़का उनके कहे में नहीं। भला बताइए, यह इन्सान को पागल कर देने वाली बात है न? अजीब कुछ ज़माना है यह, कि हर शख़्स खुद-मुख़्तार होना चाहता है, किसी की अथॉरिटी मानने का तो जैसे कोई सवाल ही नहीं उठता। डेमॉक्रेसी का युग है न, इसीलिए!

जब उनका दिल बहुत भर आता, तो कुछ इन्हीं अल्फ़ाज़ में वे शिकवा किया करते। और अक्सर ही उनके इस सबसे बड़े ग़म का प्याला छलका करता।

हरेकृष्ण बहुत ही बेज़ार रहते हैं इस लड़के से। इकलौता तो लड़का और वह भी उनके कहे में नहीं! और इसके भी कोई लच्छन नहीं कि वह उस सारी जायदाद को संच कर रख सकेगा, जो पिता जी बेटे के लिए एक सौ एक हथकंडों से इकट्ठा कर रहे हैं। मोटा-झोटा पहनना, मोटा-झोटा खाना, यही भाता है छोकरे को। हरेकृष्ण कभी-कभी अपने हमजोलियों से कहते भी हैं—भाई, अजब कुलच्छनी लड़का जनमा है मेरे घर में। उसे न अच्छा खाने से मतलब, न अच्छा पहनने से। उसकी उम्र के दूसरे लड़कों को देखता हूँ, सब माँ-बाप की नाक में दम किये रहते हैं, आज यह चाहिए, तो कल वह

चाहिए, आज फ़लालैन का सूट बन रहा है, तो कल गैबरडीन का, परसों सर्ज का, और नये जूतों और टाइयों की फ़रमाइश तो जैसे रोज़ की बात है।...मगर मेरे इन संन्यासी जी को इस सबसे कोई मतलब ही नहीं; एक फटा कुर्ता और फटा पैजामा टाँग लिया, नयी-पुरानी जैसी भी चप्पल मिल गयी पैर में डाल ली और हाथ में ले लिया झोला और बस हो गये तैयार दुनिया में अलख जगाने! मुर्ग़ा बाँग न दे, तो भला सुबह कैसे हो!

और यह बात हरेकृष्ण अपने लड़के की तपस्विता पर मन-ही-मन रीझते हुए नहीं कहते थे (शायद किसी समय कुछ थोड़ा-सा अंश उस चीज का भी रहता हो), ज़्यादातर उनका शिकायती स्वर वाक़ई शिकायती होता था। उसमें होता था रंज और गुस्सा और झुंझलाहट। हरेकृष्ण को ऐसा महसूस होता कि जैसे वह चिबिल्ला लड़का सामने खड़े हो कर उन्हें मुँह चिढ़ा रहा हो, जैसे दुनिया में उनकी हँसी उड़वाना ही उसे अभीष्ट हो।

वह अपने फ़ुर्सत के वक्त में कभी आँखें बन्द करके सुस्ताते, तो उन्हें अपनी आँखों के सामने यह तसवीर दिखाई देती कि सब उन पर हँस रहे हैं और अपने कानों में आवाज़ें बजती हुई सुनाई देतीं—देखते हो, बाप की बेटे पर एक नहीं चलती, एक नहीं चलती, जज साहब पर भले उन्होंने अपना रोब गाँठ रखा हो, मगर खुद अपने लड़के पर तो उनका कोई बस नहीं। चिराग़ तले अंधेरा, जी हाँ, चिराग़ तले अँधेरा! लड़के पर सियासत का रंग ज़रा ज़्यादा गहरा चढ़ गया है, अठारह महीने जेल भी काट आये हैं आप!

यह नहीं कि हरेकृष्ण वकील अपने लड़के को प्यार नहीं करते, मगर हाँ, यह भी है कि उनके दिल में यह बात सदा खटकती रहती है कि लड़का उनके बताये हुए रास्ते पर नहीं चलता। और दुनिया में

एक तरह के लोग ऐसे होते हैं, जिनके लिए इससे बड़ी ट्रैजेडी दूसरी नहीं होती कि कोई उनके बताये रास्ते पर नहीं चलता।

एक रात, क़रीब ग्यारह बजे, जब घर के सब लोग सो गये थे और घर में सिर्फ़ बाप-बेटा जाग रहे थे, तब हरेकृष्ण मुरारी के कमरे में गये। मुरारी बड़े ज़ोरों में कुछ लिखता चला जा रहा था। पिता के आने की आहट भी उसे नहीं मिली। वह लिखता ही रहा।

हरेकृष्ण ने अपनी उपस्थिति की घोषणा करते हुए पूछा—क्या घसीट रहे हो इतनी रात गये?

मुरारी जैसे सोते से जागा, बोला—आप? आप यहाँ कब से खड़े हैं?

हरेकृष्ण ने कहा—अभी तो आया हूँ; मगर तुम यह लिख क्या रहे हो?

—यों ही, कुछ ख़ास नहीं। एक रिपोर्ट है। कल भेजनी है।

हरेकृष्ण ने खीझ के स्वर में कहा—यह तुम क्या फ़िज़ूल के रम-झल्लों में पड़े रहते हो! बिलकुल बेसूद चीज़ है!

मुरारी ने मुसकराकर ईषत् व्यंग्य के स्वर में कहा—सूद-ब्याज की चिन्ता मुझे नहीं रहती...

हरेकृष्ण ने थोड़ा गरमाते हुए कहा—हाँ-हाँ, बहुत सुना है वह सब। ज़्यादा आइडियलिज़्म मेरे सामने न बघारो! अपने वक़्त में मैंने भी बहुत किया है यही सब, मगर फिर मैंने देख लिया कि कोई फ़ायदा नहीं...

मुरारी ने बात काटते हुए कहा—फ़ायदा...फ़ायदा कैसा?

हरेकृष्ण ने कहा—हर तरह का फ़ायदा...

मुरारी—यानी रुपये-पैसे का?

हरेकृष्ण—तुम तो मुझे क्रास-एक्ज़ामिन करने पर ही आ गये! मुझको लंगी लगाना इतना आसान समझा है? वही तो मेरा मैदान है...हाँ, तुम ठीक कहते हो, रुपये-पैसे का भी फ़ायदा और देखो,

फ़ायदा सिर्फ़ रुपये-पैसे का नहीं होता। समाज में इज़्ज़त, मर्तबा, शोहरत, फ़ायदे में सभी बातें आ जाती हैं। लेकिन मुरारी बाबू, रुपये-पैसे का फ़ायदा भी मुँह बिचकाने की चीज़ नहीं होती।

मुरारी ने कठहुज्जती के लहजे में कहा—ऊँह, पैसा आदमी के लिए होता है; पर इसका यह मतलब तो नहीं कि आदमी पैसे के लिए हो जाए। तब तो दुनिया में कभी कोई ग्रेट काम ही न हो। हर ग्रेट काम के पीछे कोई-न-कोई आइडियलिज़्म होता है।

हरेकृष्ण ने तिनगकर कहा—अब मुझी को लेक्चर न पिलाने लग जाइए, मैंने बहुत दुनिया देखी है। ये बाल मैंने धूप में सफ़ेद नहीं किये हैं। अगर यह सब लौंडपन जो इस वक़्त तुम्हारे दिमाग़ पर छाया हुआ है, और मेरे दिमाग़ पर भी छाया रहता, तो अब तक मैं बिक गया होता और तुम्हारे सर पर यह छप्पर भी न होता, जिसके नीचे बैठकर तुम अपना आइडियलिज़्म बघार रहे हो!

मुरारी ने देखा कि मामला कुछ तूल पकड़ता जा रहा है, इसलिए उसने बहुत नर्म अन्दाज़ में कहा—यह तो अपना-अपना ख़याल है, पिता जी। आपका ख़याल है कि इन्सान को सबसे पहले अपने फ़ायदे की बात सोचनी चाहिये; मेरा ख़याल है कि ऐसा करना इन्सान को अपने निजी लाभ के पास भी नहीं पहुँचाता। यह तो अपना-अपना ख़याल है।

हरेकृष्ण ने भी कुछ नरम पड़ते हुए और मुरारी की बात समझने के लहजे में कहा—नहीं, हर जगह अपने ही फ़ायदे की बात को आगे रखना ग़लत भी हो सकता है; मगर इन्सान कुछ भी करे, कहीं भी करे, अपनी इज़्ज़त को, अपनी पोज़ीशन को तो बालाए ताक़ नहीं रख सकता। अपनी पोज़ीशन के लिए ही तो आदमी सब कुछ करता है।

मुरारी ने बड़ी ढिठाई से कहा—क्षमा कीजिएगा, पिता जी, इसके पीछे भी वही जेहनियत है। मैं तो समझता हूँ कि जब इन्सान ऐसा

कोई काम करता है, जिससे उसके सीने के भीतर की कोई भूख शान्त होती है, तब उस काम से उसे जो सुख, जो सन्तोष मिलता है, वही उसका सबसे बड़ा पुरस्कार होता है।

हरेकृष्ण ने हिक़ारत से मुसकराते हुए कहा—वर्चू इज़ इट्स ओन रिवार्ड की बात कह रहे हो ! उँह, सब दुनिया को ठगने की बातें हैं। कोरी बातें। इनको अमल में लाते तो मैं किसी को नहीं देखता, सिवाय कुछ थोड़े से सरफिरों के।

मुरारी ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरेकृष्ण ने कहा—नातजुर्बेकार जवानी और किसे कहते हैं, बेटा ! ज़रा और बड़े होगे, तो मेरी बात समझने लग जाओगे।

मुरारी ने तब भी कुछ नहीं कहा, कोई प्रतिवाद नहीं किया। हरेकृष्ण ने शायद समझा कि लड़के पर उनका जादू चल रहा है। बहुत उत्साह में भरते हुए बोले—दुनिया का जो उसूल हो, उसी के हिसाब से आदमी को अपने-आप को गढ़ना पड़ता है; वर्ना दुनिया में बसर कैसे हो ? मैं भी तुम्हारी उम्र का था, तो कांग्रेस में इसी जोश-ख़रोश से काम करता था। मगर धीरे-धीरे मैंने देखा कि समाज में और पार्टी में पूछ उन लोगों की नहीं होती, जो जान लगाकर काम करते हैं, बल्कि उनकी होती है, जो काम तो कम करते हैं, मगर ढिंढोरा ज़्यादा पीटते हैं। जो जितना ज़्यादा भेस बना सकता है, उसकी उतनी ही ज़्यादा आवभगत होती है। यानी जो जितना बड़ा बहुरूपिया, उतनी ही उसकी शान-शौकत। अब तुम क्या करोगे इसको, और मैं क्या करूँगा इसको, जो है सो है ! लिहाज़ा मैंने भी अखाड़े की मिट्टी हाथ में ली और ताल ठोंककर खड़ा हो गया। और अब तो, बेटा, हिन्दू महासभा में कुछ पढ़े-लिखे लोग भी हो गये हैं, तब तो वहाँ निरे पोंगा पंडितों का राज था। लिहाज़ा उन्हें ज़रूरत थी अंग्रेज़ीदाँ लीडर की, और मैं मैदान में उतरा हुआ था ही। जम गयी

बात। फिर तो एक बार वह हड़बोंग मचाया मैंने गोबध को लेकर कि शहर हिल उठा। मुझे तो कोई बहाना चाहिए था सामने आने के लिए, सो गोकशी से बढ़ कर क्या चीज़ होती; वर्ना गाय कटे या न कटे, मेरे बाप का क्या जाता है और सारी दुनिया में रोज़ जो लाखों गायें कटती हैं, उसको मैं रोक लेता हूँ क्या ?...खैर, तो हुआ यह कि साल भर में ही शहर में मेरा सिक्का जम गया और मेरी वकालत भी चमक गयी। पहले भी मेरी वकालत कुछ बुरी न थी, लेकिन अब तो उसमें जैसे चार चाँद लग गये...

अपने बाप के मुँह से आज इस कहानी को सुनकर मुरारी को काफ़ी अचरज हो रहा था। वह सोचने लगा था कि पिता जी आख़िर क्यों आज इस तरह अपनी पोल खोले दे रहे हैं; क्योंकि यह पोल खोलना नहीं तो और क्या हुआ ?

तभी उसके कान में शब्द पड़े—नथिंग सक्सीड्स लाइक सक्सेस......

मुरारी चौंक गया—किस बात की कैसी निष्पत्ति ! कहाँ का पानी कहाँ जाकर मरता है, कुछ समझ में नहीं आता !

बोला—ये इस सड़ी-गली दुनिया के क़ायदे-क़ानून हैं......

हरेकृष्ण ने बात काटते हुए कहा—बस-बस बन्द करो अपना व्याख्यान ! तुम्हारी दुनिया के आने में अभी देर है। अभी से दिन-रात उसका ख़्वाब मत देखते बैठो ! ब्रिहेव इन रोम ऐज़ द रोमन्स डू...जैसा देस वैसा भेस......

मुरारी ने हाँ-ना कुछ नहीं कहा।

—तुम देखते हो, ये सब कितने कांग्रेसी लीडर मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काटा करते हैं, क्यों ? पहले यही लोग मेरी बात न पूछते थे और अब खड़े दुम हिलाया करते हैं। अभी श्रीयुत फलाने आये हैं, तो थोड़ी देर में पण्डित ढिकाने आये हैं ! आखिर क्यों ? इसलिए कि मेरे हाथ

में कई गाँवों के हज़ारों वोट हैं, और उन्हें वोट चाहिए । लखमीपुर, फ़रज़ंदपुर, बीबीहटिया, तीही, रामनरायनगंज और आसपास के दूसरे तमाम मौज़ों के वोट मेरे हाथ में हैं—सारे-के-सारे मेरे मुवक्किल हैं। तो जनाबमन्, यही राज़ है इन हज़रात की मेहरबानी का । अब तुम्हीं कहो, अगर मैंने पहले से अपना सिलसिला न जमा कर रक्खा होता, तो ये लोग मेरी बात पूछते ? अब मैं हूँ कि इन सबों को दौड़ाऊँगा भी और काम भी किसी का नहीं करूँगा ।...मुझे क्या इन्होंने निरा मिट्टी का लौंदा समझ लिया है ? मैं खुद क्यों न इंडिपेंडेंट टिकट पर खड़ा हो जाऊँ इन इलाक़ों से ? मगर अभी मैं अपनी थाह थोड़े ही लगने दूंगा किसी को, मैंने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं...

हरेकृष्ण ने देखा कि मुरारी उनकी बात सुन तो रहा है, मगर उसकी आंखों में एक बेसब्री है । दानिशमन्द आदमी थे । चलते-चलते बोले—बेटा, अभी तुम्हारी उम्र कच्ची है, मगर एक-न-एक दिन......

मुरारी ने वाक्य पूरा किया—मेरी अक़ल ठिकाने लगेगी, यही न ? देखा जायगा ।

रात का एक बज गया था । सोने के पहले मुरारी को अपनी रिपोर्ट पूरी करनी थी ।

हरेकृष्ण की उम्र पचास के लगभग थी । उनकी पत्नी के देहान्त को छः बरस हो गये थे । घर में दो लड़कियाँ और एक लड़का—यही मुरारी—बस यही तीन थे । मुरारी एम० ए० में पढ़ता था । उससे छोटी कुसुम, जो बीस साल की थी, बी० ए०, और उससे छोटी नीलम इंटरमीडिएट में ।

आज रात को हरेकृष्ण का सुशीला से मिलने का वादा था मगर मुरारी के फेर में वह बात ध्यान से उतर गयी थी और अब रात

ज़्यादा जा चुकी थी और हरेकृष्ण को बहुत बुरा मालूम हो रहा था।

सुशीला? सुशीला एक विधवा स्त्री थी। पति के देहान्त को कई वर्ष हो गये थे, यों उसकी उम्र अभी ज़्यादा न थी, मुश्किल से तीस। पति के न रहने पर जायदाद के बटवारे के बारे में अपने देवरों से उसके कुछ झगड़े चले थे। उन्हीं के सिलसिले में हरेकृष्ण के पास आयी थी, पहली बार। सो वकील साहब ने उसका मुक़दमा तो जीत दिया, मगर अपने दिल को हार बैठे। सुशीला में कुछ ऐसा नमक था कि उसने उनको भी गला दिया। वह बेवा थी, यह रँडुए थे, जोड़ी भी राम ने अच्छी ही मिलायी थी। इस तरह इधर कई साल से हरेकृष्ण उसके यहाँ आते-जाते थे, 'दिल-बहलाव का सामान हो जाता था। बाहर-ही-बाहर निकल जाते थे ताकि किसी को कानों-कान खबर न हो। मगर ऐसा भला कैसे होता, दीवारों के भी कान होते हैं, और आँखें भी! इतने बरसों में किसी को हरेकृष्ण का भेद मालूम न हुआ हो, यह बात न थी। खुद हरेकृष्ण को भी इसके बारे में कोई भरम न था; मगर उन्हें कोई ढिंढोरा तो पीटना नहीं था। बात जो थी, सो थी और किसी को अगर खबर हो ही जाती है, तो हो जाए। उँह, ये परनालियाँ और होती किसलिए हैं? और लोग भी ऐसे ही थे कि सब देख-सुन कर भी दरगुज़र कर जाते थे। चाहे यह यह बात रही हो कि दुधार गाय की चार लात भी सह ली जाती है, चाहे यह कि धोती के नीचे सब नंगे रहते हैं, और चाहे यह कि घूर पर सभी को अपना कूड़ा-कर्कट फेंकने का बराबर हक होता है। (समाज के गुरुजनों के नज़दीक सुशीला घूर तो थी ही, न कुंवारी, न ब्याहता!) हरेकृष्ण को इसके लिए कोई बुरा-भला न कहता, और न इस कारण से समाज में उनकी इज़्ज़त, उनकी मान-प्रतिष्ठा में ही कोई कमी हुई थी। उनके वही तेवर थे, वही रोब-दाब। अरे भाई, बड़ों के ढंग निराले होते हैं। कोई छोटा आदमी होता, तो लोग कहते, चोरी की-चोरी, ऊपर से सीनाजोरी!

मगर हरेकृष्ण कोई छोटे आदमी तो थे नहीं। ठीक ही तो कहा है, 'समरथ को नहीं दोष गोसाई।'

आज सुशीला से मिलने की बात तय थी, मगर मुरारी के संग बहसा-बहसी में बहुत देर हो गयी थी, और अब इस वक़्त घर से निकलना ठीक न था। समाज को वह गधा समझते थे ज़रूर, मगर उनका कहना था कि गधे पर उतना ही बोझ लादना चाहिए जितना कि वह ढो सके। सीना ठोंककर बदफ़ेली करने में कोई मर्दमी नहीं, वह तो लुच्चों-लफंगों का काम है।

गरज आज हरेकृष्ण सुशीला के पास नहीं गये और यह सोचते-सोचते सो गये कि कल उसको क्या जवाब देंगे।

हरेकृष्ण की जिन्दगी के इस पहलू के, सही मानों में, अकेले राज़दाँ मिस्टर मेहता थे। दोनों में बेतरह पटती थी और उनमें आपस में किसी किस्म का पर्दा न था। मिस्टर मेहता हरेकृष्ण की इस कमजोरी को जानते थे; मगर एक तो वे खुद इस मर्ज से बाहर न थे, दूसरे वे हरेकृष्ण के दिमाग के बड़े कायल थे, और कहते थे—ऐसे आला दिमाग़ आदमी के तो सात खून माफ़ होने चाहिए, इसमें क्या है! यह तो बड़ी मामूली चीज़ है. और अगर यह गुनाह है, तो फिर इस गुनाह से कौन बचा है? हाँ, नहीं तो!

एक रोज़ मेहता ने मज़ाक-ही-मज़ाक में हरेकृष्ण से कहा—यार तुम भी ही एक आदमी हो! ऐसा भेस बनाए रहते हो कि हाँ, नहीं तो! पूजा-पाठ, पोथी-पत्रा, नेम-धरम, कोई तुमको देखे, तो यही समझे कि इससे बड़ा साधु और कौन होगा! हाँ, नहीं तो!

हरेकृष्ण अपनी इस प्रच्छन्न प्रशंसा को निगलते और डकारते खड़े रहे।

मेहता बोलते गये—कभी-कभी तो मुझे हँसी आती है तुम्हें देख कर, तुम्हारी ऐक्टिंग देख कर...और कभी हैरत होती है, हाँ नहीं तो।

हरेकृष्ण ने कहा—तुम पागल आदमी हो ! मैं कतई ऐक्टिंग नहीं करता। वही अब मेरी असली शक्ल है !

मेहता—अब ?

हरेकृष्ण—अब आदत पड़ गयी है न। शुरू-शुरू में जरूर ऐक्टिंग करनी पड़ती थी। अब तो वह चीज मेरे खून में जज्ब हो गयी है। अंग्रेजी में मसल भी तो मशहूर है—प्रैक्टिस मेक्स ए मैन परफ़ेक्ट...

हरेकृष्ण ने हँसने की कोशिश की। मगर हँसी खिसियाहट बन कर रह गयी। शायद इसी से हरेकृष्ण को अपने ऊपर झुँझलाहट महसूस हुई, और उनके बोलने में अनायास कुछ गुस्से का रंग आ गया। बोले—वह मेरा इन्तकाम है इस दुनिया पर, माइ रिवेन्ज ! बड़ा सताया है मरदूदों ने, क्या-क्या नाच नचाया है...

मेहता ने उत्सुकता से पूछा—क्या-क्या ?

हरेकृष्ण ने बड़प्पन के अन्दाज में मुसकराते हुए कहा—अमाँ, क्या करोगे सुन कर ! फिर कभी सुनना, लम्बी दास्तान है। अरे वही जो-कम-ओ-वेश सबके संग होता है...तभी से मैंने तय किया कि यह दुनिया ईमानदारी की नहीं है। यह टेढ़ी दुनिया है, और यहाँ सीधी उँगली से घी नहीं निकल सकता।...और फिर मैं तो वकील हूँ, मुकदमे को समझ कर किलेबन्दी करता हूँ। मेरे पेशे ने मुझको यही सिखाया है। दुनिया में निन्नानबे फीस दी लोग कामयाबी के पुजारी होते हैं, जिनके पास दुनिया की हर चीज को जाँचने की यही एक कसौटी होती है।

मेहता उनको प्रशंसा की आँखों से देखते रहे, कुछ बोले नहीं।

बतख जिस तरह अपने ऊपर पड़े हुए पानी को झाड़ती है, उसी तरह हरेकृष्ण ने अपने सीरियस मूड को झाड़ने की कोशिश की, हो-हो करके हँसे और अपनी बात खत्म करते हुए बोले—यार, यह जिन्दगी भी एक अच्छा-खासा मजाक ही है। मजाक ही की तरह इसे लेना भ

चाहिए, और जो मेरी बात पूछो, तो अब खुद मेरे नाटक ने मुझको अपनी गिरफ़्त में ले लिया है और अगर मैं चाहूँ भी, तो इस खोल को अपने ऊपर से नहीं उतार सकता; क्योंकि अब वह खोल नहीं, मेरी खाल है, जिन्दा खाल, मेरे शरीर का अंग...तुमने तो देखा है......

यह कहकर हरेकृष्ण और भी जोर से हँसे, मगर इस हँसी में कहीं कोई खुशी न थी, जैसे खूब ही लजीज, जाफरानी खीर हो और उसमें कहीं कोई किसकिसाहट हो।

हारे-थके

मैं नेगी साहब के बँगले पर जा रहा था, जी हाँ, वही पुलिस सप्रूडंट नेगी साहब। धनीराम से कुछ ज़रूरी काम था। धनीराम सप्रूडंट साहब के यहाँ खानसामा है। कलक्टर साहब के बंगले से दो बंगला हटकर सप्रूडंट साहब का बंगला है।

मैंने देखा कि कलक्टर साहब के बंगले के पास छोटी-मोटी एक भीड़-सी जमा थी। मैं भी खड़ा हो गया कि आख़िर माजरा क्या है। इस वक़्त यहाँ इतनी भीड़ कैसी...

तो देखा कि फाटक के ठीक बग़ल में, फाटक से सटकर ही कह लीजिए, एक बुड्ढा आदमी आँख मूँदे पड़ा है और उसके बग़ल में एक पचीस-छब्बीस की पीली-पीली-सी मगर काफ़ी सुन्दर जवान औरत बैठी हुई है। फिर भी बात कुछ समझ में आयी नहीं। भीड़ की बात तो

समझ में आ गयी। तमाशा है, इसलिए भीड़ है। इनमें बहुत से मनचले तो आँख सेंकने ही के लिए खड़े हो गये होंगे।...लेकिन यह बात नहीं समझ में आयी कि आख़िर को ये दोनों यहाँ क्यों पड़े हैं? यह तो कोई जगह नहीं—

तभी वहाँ पुलिस की गाड़ी आकर रुकी। उसमें से चार-पाँच जवान कूदकर निकले। उन्होंने भीड़ को काटने के लिए हवा में अपना डंडा चार-छः बार घुमाया (एकाध डण्डा किसी के सर पर भी पड़ गया हो तो उसकी सनद नहीं!) और उन दोनों की तरफ़ लपके। बुड्ढे ने शायद गाड़ी की घड़घड़ाहट से आंखें खोल दी थीं। उसने पुलिसवालों को उस जवान औरत की तरफ़ बढ़ते देखा तो पागल की तरह चिल्लाया —उसको हाथ मत लगाना। उसको हाथ मत लगाना। चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।...

मगर पुलिसवाले क्या कभी किसी की सुनते हैं और इस वक़्त तो...

—देखो उसको हाथ मत लगाना...नहीं तो...

बुझते दिये की तरह भभककर बुड्ढा उठा और पुलिसवालों और उस जवान औरत के बीच अपने को डालते हुए बोला—तुम... तुम...उसको हाथ नहीं लगा सकते।

पुलिसमैनों में जो सबसे लहीम-शहीम था, जो शायद हेड-कानिस्टिबिल था, उसने नाक पर से मक्खी उड़ाने की तरह, अपने भारी, बालदार हाथ की उल्टी तरफ़ से एक तगड़ा झांपड़ बुड्ढे को रसीद किया जिसने वहीं उसे ढेर कर दिया।

उस औरत ने भी काफ़ी जोर-आज़माई की, शायद एक पुलिसमैन को काट भी खाया मगर कोई नतीजा नहीं निकला। दो-तीन मिनट के

अन्दर-अन्दर उन्होंने इन दोनों मुजरिमों को उठाकर अपनी गाड़ी में डाल लिया और दोनों अपने हाथ-पैर फटकारते ही रह गये।

मनचले हेडकानिस्टिबिल ने उस जवान औरत को गाड़ी में रखते हुए, ज़ोर से उसके गाल को मसलकर कहा—गोरी, आज रात तो तुम हमारी मेहमान होगी !...

और गाड़ी चल दी।

मेरे लिए अब यह राज़ और गहरा हो गया। यह गाज़ीपुर जगह भी तो एक ही सड़ी हुई है जहाँ एक ढंग का अखबार भी नहीं वर्ना कलकत्ता-बंबई होता तो—उनकी बात ही और है। इधर मैं परेशान था, उधर औरों में भी इसी की चर्चा थी।

किसी ने कहा—मालूम होता है ये कहीं किसी को ठगकर भाग आये हैं और यहाँ पुलिस ने उन्हें आन पकड़ा है।...

कोई बोला—कहीं ऐसा तो नहीं कि यह बुड्ढा इस लौंडिया को भगाकर लाया हो ? अरे, 'कुछ ठीक नहीं। आजकल ऐसी वारदातें बहुत हो रही हैं।

तीसरे, कोई खाँ साहब थे, बोले—अरे साहब, चोर-बदमाश होंगे। पुलिस कभी किसी को खामखाह नहीं पकड़ती।

तभी मेरे बगल में खड़े एक बाबूजी बोल पड़े—क्या कहते हैं बड़े मियाँ, न वह चोर है न बदमाश। गर्दिश का मारा है बेचारा। दिमाग़ में कुछ खलल जरूर है मगर आदमी नेक है...

गाँठ पर एक गाँठ यह और लगी। नेक आदमी है तो पुलिस उसे पकड़ती क्यों है ? और वह इस तरह फुटपाथ पर क्यों पड़ा है ? फुट-पाथ तो किसी भले आदमी के बैठने की जगह नहीं...यह ठीक कहते हैं, ज़रूर कोई सिड़ी आदमी होगा।

उन बाबूजी की बात से कुछ सनसनी, कुछ दिलचस्पी तो पैदा हुई, लेकिन रुकने की फ़ुर्सत किसी के पास न थी। लिहाजा दो मिनट के

अन्दर सभी लोग छंट गये। लोगको अपनी जगह पर कुछ यह डर भी था कि कहीं गवाही में न पकड़ बुलाये जायं। लिहाजा आगे-पीछे सभी लोग टल गये। मैंने भी क़दम आगे बढ़ाया। गो मेरा मन इस घटना के बारे में कुतूहल से भरा हुआ था।

तभी उन बाबूजी ने मुझसे कहा—ओ भैया, सुनते हो, तुम्हारे पास माचिस तो नहीं है?

मैंने माचिस जेब में से निकालते हुए कहा— लीजिए।

मेरे हाथ से माचिस लेकर वह आगे बढ़े और पास ही एक पुलिया पर बैठते हुए बोले—सुनोगे, इस आदमी की कहानी? बहुत जल्दी में तो नहीं हो? आओ बैठो।

मुझे जल्दी तो कोई खास थी नहीं, बस धनीराम से मिलना था। लेकिन थोड़ी झिझक जरूर लगी, क्योंकि मैं ठहरा कुली-कबाड़ी और वह थे बाबू साहब। उनके कपड़े-लत्ते बहुत अच्छे न थे, मगर उससे क्या? बाबू तो बाबू और कुली तो कुली। मगर खैर, जब यह खुद ही कहानी सुनाने को बुला रहे हैं तो ठीक ही है।

मैंने पुलिया की तरफ धीरे-धीरे बढ़ते हुए पूछा—क्यों, बाबूजी, आप इनको जानते हैं क्या?

उस आदमी ने आँख मटकाते हुए कहा—कैसी बात करते हो, भला मैं न जानूँगा इन्हें? कभी इनके साथ काम किया कभी अलग, मगर खैर जानता तो पन्द्रह बीस बरस से हूँ।

मैंने उनको और उकसाने की गरज से कहा—तब तो बाबूजी, आप उनका राई-रत्ती हाल जानते होंगे।

उन्होंने खुश होते हुए कहा—हां जानता तो हूँ। संग में काम भी किया है। समझे न? इनका नाम है रामाशीष सिंह। मगर नाम खैर कुछ भी हो, इनके बारे में जानने की सबसे जरूरी, सबसे बड़ी बात यह है कि इनके मुबलिग सात लड़के-लड़कियां हैं और भगवान की कुछ

ऐसी दया है कि लड़कियां ही ज्यादा हैं। समझे न? सात में पांच तो लड़कियां हैं। लड़कियां सब बड़ी-बड़ी हैं और लड़के दोनों भगवान की दया से अभी जरा-जरा से हैं। यह भी ईश्वर की एक लीला है। यह जो लड़की थी न, जिसे अभी तुमने देखा, सबसे बड़ी है। इसका नाम ज्ञानवती है, सब ज्ञानो ज्ञानो पुकारते हैं। यह इक्कीस की है। दिखती छब्बिस-सत्ताइस की है मगर है नहीं। मट्टी की बात है और फिर परेशानियाँ—हाँ तो यह ज्ञानो इक्कीस की है। इससे छोटी, नाम भूलता हूं, उन्नीस की है। उससे छोटी कृष्णा कुल साल भर कम है यानी अठारह की। यह तो तीन हुईं—दो लड़कियाँ और हैं। कमला और प्रेमा। कमला सोलह की है और प्रेमा तेरह की। पता नहीं, ग़रीबी में लड़कियाँ जवान भी जल्दी हो जाती हैं या क्या बात है, प्रेमा भी पूरी औरत दिखायी देने लगी है।...मगर यह सब बातें मैं तुम्हें क्यों सुना रहा हूँ?......खैर, तो कहने का मतलब यह है कि पाँच तो सयानी-सयानी लड़कियाँ हैं जिनमें से एक की भी शादी नहीं हुई। यह ज्ञानो भी, जिसे तुमने देखा, अभी इस तक का ब्याह नहीं हुआ है। लड़के जो दो हैं, वह अभी बच्चे ही हैं, उनसे किसी क़िस्म का सहारा नहीं। इतनों के अलावा चार खानेवाले और हैं। मियां-बीबी खुद, एक विधवा बहन और बुड्ढी माँ जो कुछ भी नहीं तो सत्तर की होंगी। कहने का मतलब यह है कि इनके घर में छोटे-बड़े मिलाकर पूरे ग्यारह आदमी हैं। ग्यारह का मतलब होता है एक टीम, कोई भी टीम, हाकी टीम, फुटबाल की टीम, क्रिकेट की टीम। राशनिंग वालों ने नाम दिया है चित्रगुप्त इलेविन; चित्रगुप्त इसलिए कि बेचारे लालाजी हैं। पहले तो रामाशीष बाबू भी—हाँ यही नाम है उनका—इस नाम पर सबके संग हँस दिया करते थे, लेकिन अब नहीं हँसते। न हँसते हैं और न कुछ कहते हैं, बस सुन लेते हैं। आदमी बुरे नहीं, बल्कि अच्छे ही कहना चाहिए, बहुत अच्छे, नेक हैं, भलेमानस हैं, दूसरे का फायदा छोड़ नुक़सान कभी

न होगा इनके हाथ से। वह सब बात है, लेकिन मैं तो फिर भी ऐसे आदमी को सिड़ी ही कहूँगा जो दुनिया में रहता है मगर दुनिया के क़ायदे बरतना नहीं जानता...कि झूठ कहता हूँ ?

ठीक उसी वक्त पुलिस की हवालात में रामाशीष बाबू के कानों में अपनी बीबी के शब्द बज रहे थे—

—ऐसे ही जोगी-जती थे तो जाते कहीं जंगल में धूनी रमाते, यह घर-गिरस्ती का जंजाल क्यों फैलाया ? ये बाइस ठो बेटी-बेटे किसके लिए पैदा किये ? इनका इन्तजाम कौन करेगा ? मैं तो यही जानती हूँ कि संसार में रहकर संसारी बनना पड़ता है। दुनिया का यही कायदा है और यह कायदा सभी के लिए है। आपके लिए कोई नया कायदा नहीं बनेगा।...मगर आपको इससे क्या ! आपके कायदे तो अलग ही हैं दुनिया से !...

...चरित्र...चरित्र...चरित्र। चरित्र का सारा ठेका आपने ही तो लिया है।...आप ऐसे ही बड़े हरिश्चन्द्र थे तो रहे आते, अपने साथ हमारी भी मट्टी आपने क्यों पलीद की...अपने चरित्र का जब इतना घमण्ड था आपको तो तोला दो तोला संखिया भी लेकर रख ली होती ! ...सच कहती हूँ आपकी जगह कोई और होता तो उसने दो-एक हवेली खड़ी कर ली होती !...वर्ना एक आप हैं कि घर में फ़ाके हो रहे हैं और रोटी का भी सहारा नहीं है।...

ज्वालामुखी के गरम लावे की तरह जलते हुए वे तमाम तेज़-तीखे शब्द आ-आकर उन्हें उद्विग्न करते रहे, दुख देते रहे।...

...मगर साथ ही तसवीर का दूसरा पहलू सामने आया—शान्त, स्निग्ध, मरहम की तरह ठण्डा, ज्ञानो की माँ का वहाँ आकर पैरों को पकड़ लेना और कहना—मुझे माफ़ कर दो...यह जीभ निगोड़ी सबसे बड़ी बैरिन है मेरी...गुस्सा आता है तो मुझे फिर कुछ होश नहीं रहता...कह दो कि तुमने मुझे माफ कर दिया नहीं तो मुझे कल न पड़ेगी।...मैं तुम्हें इतना बुरा-भला कहती हूं लेकिन मैं क्या तुम्हें जानती नहीं!...सचमुच ईमान से बड़ी कोई चीज नहीं...पैसा तो हाथ की मैल है...आदमी चला जाता है उसका नाम रह जाता है...भूखे हैं तो आज भूखे हैं, हमेशा थोड़े ही भूखे रहेंगे, फिर कुछ न कुछ सिलसिला होगा ही मगर कलंक तो एक बार लगता है और हमेशा को हो जाता है।...तुमने कुछ नहीं किया, बस सुनाम कमाया, बड़ी बात की...

रामाशीष को उस वक़्त भी हँसी आ गयी, कैसी समझदारी की बातें कर रही थी! बोलती जाती थी और रोती जाती थी, पगली! मगर उसकी पहली ही बात ठीक है। संसार में रह कर तो संसारी बनना ही पड़ेगा, कोई चारा नहीं।

उनका मन आर्द्र हो गया और उन्होंने आंखें मूँद लीं। आंखें मूँदते ही, सिनेमा की तरह, घर के लोगों की तसवीरें आंख के सामने दौड़ने लगीं—करीब सत्तर साल की बूढ़ी मां, एक अभागिन बहन गंगा, जिसे विधवा हुए अठारह साल हो गये, और उनकी अकाल-वृद्धा पत्नी केसर, उनके सात अदद बच्चों की माँ, सात अदद—ज्ञानो, मानो, कृष्णा, कमला, प्रेमा, हरीश, ब्रजेश...

...तो कहने का मतलब यह कि जरा जरूरत से ज्यादा सीधे हैं ये महाशय। ऐसे आदमी किसी काम के नहीं होते। ये खुद भी बर्बाद

होते हैं और दूसरों को भी अपने संग बर्बाद करते हैं। तुम ही बतलाओ, राशनिंग के हेडक्लर्क थे यह, क्या नहीं कर सकते थे। टोटल राशनिंग —टोटल राशनिंग समझते हो न, पूरी पूरी, सोलहो आने राशनिंग—उस वक्त यह भी एक राजा ही थे अपनी गद्दी के लेकिन कोई क्या कर सकता है जब किसी में अक्ल ही न हो। शहर के बड़े बड़े व्यापारी, फलाने सेठ और ढिकाने हाजी जी इनके हाथ में थे या हो सकते थे और किसी की तुमसे कोई गरज अटकी हो तो तुम उससे जो चाहे ऐंठ लो, वह खुशी खुशी देगा भी और दस बार सलाम भी करेगा। किसी को कोई लाइसेंस चाहिए तो कोई किसी मामले में फँसा है, कहने का मतलब, बीस तरह की बातें होती हैं, तुम तो जानते हो—लेकिन यह खुदा का बन्दा ऐसा था कि इसने किसी से एक पैसा न लिया...और खुद तो चौपट हुआ ही हम लोगों को भी अपने संग चौपट किया। अरे, तुम्हीं कहो, तुम अगर किसी के अंडर में—अंडर समझते हो न?—अंडर में यानी मातहती में यानी नीचे, यानी नीचे तुम और तुम्हारे ऊपर तुम्हारा हाकिम...क्यों भैया, तुम कहां काम करते हो?

मैंने कहा—फौण्ड्री में...

—फौण्ड्री में? किस फौण्ड्री में?

—सुभाष फौण्ड्री है न बाबूजी? उसी में।

—हाँ तो बताओ अगर तुम किसी के मातहत हो और तुम्हारे ऊपर वाला हाकिम एक दम हरिश्चन्द्र का अवतार हो तो भला तुम कुछ कर सकते हो? कुछ नहीं, सिवाय इसके कि बड़बड़ाओ और अपना माथा ठोंक लो और चुप होकर बैठ जाओ।...पहली बात तो यह कि इस आदमी को खुद सोचना चाहिए था कि मेरे घर में इतने बहुत-से खाने-वाले हैं, पाँच-पाँच लड़कियाँ बैठी हैं शादी को, कुछ तो बन्दोबस्त करना चाहिए इस सबका। मगर नहीं, इन बाबू साहब को किसी बात का कोई ग़म नहीं...मैं तो यही कहूँगा...और जो ईमान की बात कहो तो ईमान

किसके पास नहीं है। कौन ईमानदार नहीं बनना चाहता? तुम नहीं चाहते कि मैं नहीं चाहता? चाहने को चाहते सब हैं लेकिन हाँ यह नहीं है कि इन बाबू साहब की तरह, इस ईमान के पीछे दर-दर की ठोकरें खायी जायें। पहाड़ ऐसी लड़कियाँ घर में बैठी हैं ब्याहने को और हम पूरे वक्त बैठे अपना ईमान ही टटोल रहे हैं, वाह रे! कहने का मतलब यह कि आप अगर ऐसे ही साधू-महात्मा हैं तो संसार में क्यों रहते हैं, जाइए, जंगल में जाइए, साधना कीजिए...हज़रत कहते थे, न खुद खाऊँगा और न किसी को खाने दूंगा, देश में भ्रष्टाचार बहुत फैल गया है, इसी से कोई तरक्क़ी नहीं हो रही है...कांग्रेस को गाली देने में सब बड़े शेर हैं लेकिन हमीं-आप अगर जा-बेजा हरकतें करेंगे तो क्या करे कांग्रेस, क्या करे कोई...बड़े पाक ख्याल के आदमी हैं बेचारे... लेकिन कहने का मतलब यह कि पाक ख्याल लेकर कोई क्या करे...हम तो भाई, दुनिया के तरीक़ों से चलते हैं...

मैं अब इनकी इस नानी की कहानी से ऊब चला था। बोला—माफ़ कीजिएगा बाबूजी, आपने बातें तो बहुत-सी बतलायीं लेकिन यह अब तक नहीं बतलाया कि आखिर वो साहब यहाँ क्या कर रहे थे? और पुलिस ने उन्हें क्यों पकड़ा?

—पकड़ेगी नहीं! कैसी बात करते हो? आपको मरना हो तो अपने घर मरिये, मेरे दरवाजे पर आकर क्यों मरते हैं!

—मेरा मुँह ऐसे क्या तक रहे हो, लगता है बात समझ में नहीं आयी...कहने का मतलब यह कि राशनिंग तोड़ दी गयी न। और राशनिंग टूट गयी तो ये बेचारे बेकार हो गये और एक महीने से इधर-उधर भटक रहे हैं कि कोई काम मिल जाय लेकिन काम कहां रक्खा है!...ऐसे ही वक्त के लिये आदमी चार पैसे जोड़ता है, लेकिन इन महात्मा जी ने तो वह भी नहीं किया था। ...और सूखी नौकरी में भी कहीं बचत होती है!...तो कहने का मतलब यह कि जो लेई-पूंजी थी

वह महीने भर में ही साफ हो गयी और घर में लोग भूखों मरने लगे।...तुम कुछ पढ़े-वढ़े हो?

किस्सा किसका हो रहा है, बीच में यह सवाल कहां से टपक पड़ा। कुछ तुक समझ में न आयी। जवाब दिया—हां हिन्दी पढ़ लेता हूँ, अटक अटककर।

उन्होंने कहा—तो कहने का मतलब यह कि तुम कभी कभी अखबार देखते हो? ...हर रोज कोई रेल के नीचे आ जाता है, कोई बाल-बच्चों समेत कुएँ में कूद पड़ता है, कोई घर भर को संखिया देकर खुद भी संखिया खा लेता है—सिड़ी होते हैं ऐसे सब लोग, लेकिन आखिर मरते क्यों हैं, मरना तो कोई वैसा आसान काम नहीं...खैर, तो कहने का मतलब यह कि इस तरह की खबरें अखबार में निकलती हैं तो दिमाग पर उनका असर भी पड़ता ही है। तो कहने का मतलब यह कि रामाशीष बाबू भी इसी हालत को पहुँच गये थे...इसके बाद की कहानी मुझे नहीं मालूम। फिर किसी ने सुझाया होगा कि इस तरह क्यों मरते हो, मरना ही है तो जाओ कलक्टर साहब के बँगले पर अनशन करके मरो, देश का भी कुछ भला हो। गांधी जी के पुजारी हो तो क्यों नहीं पकड़ते गान्धी जी का रास्ता? कलक्टर साहब के सामने पेशी हो तो कहना—हुजूर, आप ज़िले के हाकिम हैं। आप ही हमारे माई-बाप। हम आपको छोड़ अब और किसके सामने अपना दुखड़ा रोयें...बेकार हो गया हूँ, भीख नहीं मांगूँगा, पढ़ा-लिखा हूँ, मुझे काम चाहिए, काम दीजिए नहीं मैं यहीं आपकी ड्योढ़ी पर जान दे दूँगा। दूसरा करूं भी क्या? जिऊँ भी तो कैसे?

—यह ख्याल भी कुछ कम नेक न था, क्यों दोस्त? मगर अब शायद हवालात की दीवारें उसकी फ़रियाद सुन रही होंगी क्योंकि जंट साहब ने तो सुनी नहीं!...कभी जो इन महात्माजी ने कोई अक्ल की बात की हो। आये थे फ़रियाद सुनाने! हौलू कहीं का! बड़े अपने सच्चाई के नशे में भूले रहते थे—अब लगी कुछ अक़ल ठिकाने?

बोलते-बोलते वह बाबूजी हांफ-से गये। उनकी त्योरियों में तमाम बल ही बल पड़े थे और होंठों पर एक वक्र-सी मुसकान थी।...लेकिन एक आधे मिनट के अन्दर ही त्यौरी के बल साफ़ हो गये और वह वक्र मुसकान सहज मुसकान बन गयी और वह बोले—लाना, ज़रा माचिस देना, सिगरेट सुलगा लूं और चलूं...मगर तुम ऐसे उदास क्यों हो गये भाई? क्या सोच रहे हो?

मैं कुछ खास नहीं सोच रहा था। मैं यों ही अनमना-सा सामने एक टेसू के पेड़ की नंगी शाखों को देख रहा था और सोच रहा था कि इन नंगी शाखों में अंगारों की तरह, गर्म लोहे की तरह दहकते हुए लाल-लाल टेसू कब फूलेंगे क्योंकि उनके बिना ये शाखें बड़ी उदास और मनहूस दिखायी देती हैं।